# डॉ0 अबिनाश चन्द्र चतुर्वेदी – सत्यनिष्ठ व्यक्तित्व

भइया जी
'रघुवीर निवास'
साकेतपल्ली, नरही
लक्ष्मणपुर ;लखनऊद्ध
दूरभाष – 0522–2286937

जिनका चित्त कोमल होता है, उनमें अहंकार नहीं होता। जीवन–शैली में कर्तव्य–परायणता और कुशल प्रशासन की क्षमता भी उनमें ही होती है।

डॉ0 अबिनाश चन्द्र चतुर्वेदी कर्मठ अभियंता, महान देशभक्त, आदर्श व्यक्तित्व एवं कृतित्व, उच्च कोटि के शिक्षाविद् तथा प्रतिभाशाली लेखक थे। ओजस्वी वक्ता होने के नाते इनका नाम आज भी बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है।

भारत ही वह देश है, जिसने सबसे पहले संसार को 'वसुधैव कुटुम्बकम्', सत्य, अहिंसा, प्रेम, भाईचारा, शान्ति, सद्भाव और मानव–कल्याण का संदेश ही नहीं दिया, बल्कि इस पावन भूमि की सत्य–पथ से भटकी हुई मानवता को सही मार्ग पर चलने का संदेश देने के लिये स्वच्छ ईमानदार व्यक्तियों को, शासन के अधिकारियों, अभियंताओं और समाज–सुधारकों को भेजा और उन्हीं के कारण देश ने अत्यधिक प्रगति और उन्नति की है। इसी श्रेणी में हमारे चतुर्वेदी जी भी आते हैं। उनकी ईमानदारी की ख्याति आज भी है। उन्हें भारतीय लोक प्रशासन व अन्य राष्ट्रीय व प्रदेशीय स्तर की गोष्ठियों में बुलाया जाता रहा है। मेरा सौभाग्य भी उनके साथ इन गोष्ठियों में भाग लेने का रहा। वह अपने निष्पक्ष उत्तम विचार निर्भीकता से प्रस्तुत करते और वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्र–निर्माण कैसे हो – इस पर ठोस सुझाव देते तथा उन्हें कार्यान्वित करने की प्रक्रिया बताते।

डॉ0 चतुर्वेदी जी अत्यंत सरल, साधारण प्रकृति के व्यक्ति रहे। उन्हें जो भी प्रेम से बुलाता, वह अवश्य जाते। स्वैच्छिक संगठनों में उनका और मेरा साथ रहा। कल्याणकारी योजनाओं में सक्रिय भूमिका और सक्रिय भागीदारी उनकी रही। जिससे अधिक से अधिक वंचित लोग लाभान्वित हों। उनकी निःस्वार्थ जन–सेवा स्मरण किये जाने योग्य है। वे राष्ट्रीय एकता, भारतीयता और पारदर्शिता पर सदैव बल देते रहे। वे कर्तव्यनिष्ठ, कर्मठ और अनुभवी अधिकारी होने के साथ ही एक सिद्धांतवादी अभियंता थे। वे अपने सिद्धांतों से समझौता करना पसंद भी नहीं करते थे। कथनी और करनी में अंतर नहीं होने के कारण चंद लोग उनसे

असंतुष्ट भी थे, परन्तु उनकी ईमानदारी की चर्चा अवश्य करते थे।

# सौहार्द की मूर्ति भाई साहब डॉ0 अविनाश चन्द्र जी

घमण्डी लाल चतुर्वेदी
63, मोती नगर, लखनऊ

आगरा जनपद के कछपुरा गॉव के निवासी लखनऊ प्रवासी सुप्रसिद्ध समाज सेवी एवं कानून–वेत्ता स्व0 निर्मलचन्द्र जी चतुर्वेदी के ज्येष्ठ पुत्रा श्री अविनाश चन्द्र जी का जन्म 10 अगस्त 1923 को हुआ था। आपके बाबा स्व0 मुक्ता प्रसाद जी भी शहर व समाज के एक प्रतिष्ठित एवं स्वावलम्बी व्यक्ति थे।

भाई साहब अविनाश चन्द्र जी से मेरा प्रथम परिचय सन् 1956 में बरेली में अपने एक जातीय बन्धु के यहॉ हुआ था, किन्तु इस छोटी सी भेंट में उन्होंने जिस आत्मीयता के साथ बात की, वह सदैव स्मरण रही।

एक अन्तराल के बाद पुनः मेरी उनसे भेंट 'रमेश निवास', मोती नगर लखनऊ में हुई। उस समय भाई साहब कालागढ़–बिजनौर में अधीक्षक अभियन्ता थे। वही स्वभावानुकूल, सौहार्दपूर्ण एवं स्नेहयुक्त व्यवहार, आत्मीयता से ओत–प्रोत पाकर हृदय गद्–गद् हो गया एवं पुनः मिलन की अभिलाषा बनी रही। भाई साहब जैसा व्यक्तित्व, सहज स्वभाव बहुत कम लोगों में देखने में आता है तथा हृदय में अपनी पहचान व प्रभाव छोड़ता है। सदैव उनके सान्निध्य की अभिलाषा बनी रही। एक दिन अप्रैल 1973 में 'चतुर्वेदी मंडल' लखनऊ के वार्षिक सम्मेलन में पुनः उनसे भेंट का अवसर प्राप्त हुआ। इस सम्मेलन में कार्यकारिणी का चुनाव भी होना था। भाई साहब मण्डल के अध्यक्ष चुने गए और मैं सचिव। इस प्रकार मुझे एक और सुअवसर उनके सान्निध्य में आने का तथा उन्हें अधिक समझने का प्राप्त हुआ।

भाईसाहब तीन वर्ष तक मण्डल के अध्यक्ष रहे। इस काल में मण्डल के कार्य–कलापों में विशेष सुधार हुआ। उनके सतत् प्रयास से अधिकतर बान्धव बैठकों में सम्मिलित होते थे तथा सहयोग प्रदान करते थे जिससे संस्था सुदृढ़ हुई।

इस बीच आपने चतुर्वेदी महासभा की कार्यकारिणी की बैठक भी लखनऊ में करवाई तथा स्व0 श्री नारायण जी के द्वारा जीवन के अस्सी वसन्त पूरे करने पर उनके सम्मान का आयोजन किया।

उनकी उल्लेखनीय उपलब्धियों में होली–मिलन के अवसर पर समाज के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को पुरस्कृत करना, असहाय बान्धवों को गुप्त रूप से आर्थिक सहायता प्रदान करना, बान्धवों से निरन्तर संपर्क बनाए रखना आदि शामिल है जिससे मण्डल को समाज के हर वर्ग का सहयोग मिला।

इस समयावधि में मुझे उन्हें बहुत करीब से देखने–समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ और जैसा मैंने समझा, उनमें एक बहुत बड़ी लगन व क्षमता है, किसी भी कार्य को संपन्न करने व करवाने की। वह बहुत ही सरल स्वभाव के, सौम्य और उच्च विचार वाले हैं तथा सभी से सद्व्यवहार करते हैं। व्यवहार कुशलता तथा विनम्रता उनके आभूषण हैं। अनुशासित जीवन–शैली, निश्चल व्यवहार, विनम्रता उनके आकर्षण हैं। इन्हीं सद्गुणों के कारण वह अपने समाज में तथा समाज के बाहर सदा लोकप्रिय हैं। उन्हें अपने समाज के उत्थान की चिन्ता रही है एवं इस ओर सदैव तत्पर रहे जिससे संगठन को सुदृढ़ता मिली। आपका अध्यक्षीय काल बहुत ही श्रेष्ठ रहा जिसमें सामाजिक उत्थान की योजनाऍं बनीं एवं उनका बहुत क्रियान्वन भी हुआ। उनमें अपने बाबा स्व0 मुक्ता प्रसाद जी एवं पिताजी स्व0 निर्मल चन्द्र

जी के गुणों की विरासत एक साथ निहित होने से उन्होंने जातीय बान्धवों के साथ सदैव स्नेह रखा एवं उनके साथ अच्छा व्यवहार रखते हुए उनके उचित कार्यों में सदा सहयोग किया। जातीय बान्धवों के लखनऊ आने पर उनकी समस्याओं के समाधान में सहयोग देकर उनकी सहायता करते थे।

भाई साहब बड़े ही धैर्यवान और सादा जीवन उच्च विचार के व्यक्ति थे। आपने उत्तर प्रदेश के लघु सिंचाई विभाग में मुख्य अभियंता के रूप में अपनी सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, चुस्त–दुरुस्त अनुशासन के साथ अपने दायित्वों का भली–भांति निर्वाह किया।

भाईसाहब सदैव अध्ययनशील रहे हैं। आपने लॉस एन्जिल्स विश्वविद्यालय से पी–एच0डी0 व डी0एस0सी0 की उपाधियॉ अर्जित कीं। हिन्दी साहित्य में आपने विशारद पास किया।

मैं भाई साहब का आभारी हूँ कि उनके सम्पर्क में आकर उनसे बहुत कुछ सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। वे एक ऐसे पुष्प हैं जिन्होंने अपनी सुरभि से सदा सबको सम्मोहित किया है।

मैं उनके सुखद भविष्य एवं दीर्घ आयु की प्रभु से कामना करता हूँ।

नोट – यह लेख अबिनाश चन्द्र जी के जीवन काल में लिखा गया था।

नोट : यह लेख अविनाश चन्द्र जी के जीवन काल में लिखा गया था।

## भाई साहब स्वर्गीय श्री अविनाश चन्द्र जी – एक श्रद्धांजलि

मिथिलेश चन्द्र चतुर्वेदी

भूतपूर्व पार्लियामेंटरी इन्टरप्रिटर , नई दिल्ली

मैंने कब उड़ने का विफल प्रयास किया
नाम ने ही मेरा वरण किया है आकर
मैंने कब निज कृत्यों की सीमा बांधी
आंधी में मेरी नाव न  भटकी घबराकर
मैं तो अनगढ़ पत्थर की प्रतिमा रचता था।
भगवान स्वयं बस गये उसी में मुस्कराकर।

अज्ञात कवि की उक्त पंक्तियॉ हमारे भाईसाहब स्व0 श्री अविनाश चन्द्र जी पर पूर्णतः सही उतरती हैं। भाई साहब उन कुछेक व्यक्तियों में से थे जिन्होंने जो भी कर्म अपने हाथ में लिया उसमें सफलता प्राप्त की। उसका कारण यह था कि वे जो भी कार्य करते थे, उसे पूरी क्षमता, निष्ठा, लगन तथा मनोयोग

से करते थे और साथ ही उनका कार्य करने का तरीका सामान्य जन से अलग होता था और यही कारण है कि उस पर उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप होती थी।

भाई साहब अपने विद्यार्थी जीवन के समय से ही अपने आसपास स्थानीय जनजीवन, समाज के कार्यकलापों में एक उत्साही कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ता के रूप में भाग लिया करते थे। शिक्षा के आधार पर उन्होंने उत्तर प्रदेश के सिंचाई विभाग में उच्च पद पर तथा बाद में उसके लघु सिंचाई विभाग के चीफ इंजीनियर के पद पर सफलतापूर्वक उल्लेखनीय कार्य किया। मुझे याद है कि जब वे उस समय अपने विभाग के मंत्री तथा अन्य उच्च अधिकारियों के साथ प्रदेश की लघुसिंचाई योजना आदि के सम्बन्ध में दिल्ली में योजना आयोग से धन के आबन्टन नियमन के लिये आते थे तो मेरे पिताजी स्वर्गीय श्री जगदीश प्रसाद जी ;भूतपूर्व डिप्टी एकाउन्टेंट जनरल तथा भूतपूर्व सभापति महासभाद्ध के पास उनके निवास स्थान पर अवश्य मिलने आते थे। उस समय वे उनसे उन योजनाओं के बारे में भी तथा साथ ही अपने समाज के विषयों पर भी चर्चा किया करते थे।

युवावस्था से ही वे आसपास के सामाजिक जीवन, नागरिक परिवेश, उसकी समस्याओं तथा उसके कार्यकलापों से सक्रिय रूप से जुड़े रहते थे; साथ ही उसकी परम्पराओं, परिपाटियों से भी उनका गहरा लगाव था। अपने जनपद लखनऊ के स्थानीय मण्डल के अध्यक्ष के पद पर उनका कार्यकाल अत्यंत सफलतापूर्ण तथा उल्लेखनीय था। वे नवीनता के हामी थे तथा साथ ही प्राचीन परम्पराओं के समर्थक थे और इन दोनों के सम्यक् समन्वय के प्रबल पोषक थे। इस सम्बन्ध में उनके अनेक निबन्ध तथा लेख आज के परिवर्तनशील समाज के प्रति उनके विचारों व दृष्टिकोण को परिलक्षित करते हैं।

अपने प्रदेश के सिंचाई विभाग में विभिन्न पदों पर तथा लखनऊ जनपद के स्थानीय मण्डल के अध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुए वे युवाओं के प्रेरणास्रोत थे। केवल अपने विभाग के सम्बन्ध में ही नहीं, अपितु अन्य क्षेत्रों व विषयों पर कार्य करके जीवनवृत्ति तथा अर्थोपार्जन के लिये भी उन्हें सुझाव देते थे। तकनीकी शिक्षा के लिये विशेष रूप से प्रेरित करते थे। अपने प्रभाव से उन्होंने अपने प्रदेश के नवयुवकों को नियुक्ति दिलाने का प्रशंसनीय कार्य किया। ऐसे युवक, जो आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर थे किन्तु उनमें आगे बढ़ने की लगन थी, उनके लिये तो वे सब कुछ करने को तत्पर रहते थे। उनकी आर्थिक सहायता करना, मार्गदर्शन करना, उत्साह बढ़ाना, प्रेरणा देना आदि सब कुछ किया करते थे।

इतने व्यापक क्षेत्रा में कार्य करते हुए वे अनेक संस्थाओं से भी जुड़े थे तथा कई उच्च पदों पर भी आसीन हुए। विशेष रूप से इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स तथा इंस्टीट्यूशन ऑफ़ वेल्यूअर के अध्यक्ष के पद पर उनकी सेवाओं को सदैव याद किया जायेगा।

भाई अविनाश जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने कभी निजता की सीमा में खुद को नहीं बांधा। चलते रहे, चलते रहे, चरैवेति– चरैवेति उनके जीवन का मूलमंत्रा था। कार्य कितना ही कठिन क्यों न हो, परिस्थितियां कितनी भी विषम क्यों न हों, उन्होंने कभी हार नहीं मानी। परिस्थितियों के साथ कभी समझौता नहीं किया। उनका जीवन दर्शन था काम करना। वे कर्मयोगी थे। कर्तव्यनिष्ठा, लगन, परिश्रम तथा अध्यवसाय उनका स्वभाव था। सफलता उनकी चरम परिणति होती थी, नियति होती थी। इन

सभी विशिष्ट गुणों के कारण ही उन्होंने अपने कार्यक्षेत्राों में उल्लेखनीय सफलताएं प्राप्त कीं। नयी कार्यप्रणाली व कार्य करने की नवीन उद्भावनाएं विकसित कीं।

वे स्वभाव से अत्यंत विनम्र थे तथा उनका व्यक्तित्व भी अत्यंत सादगीपूर्ण था। उनकी लेखन शैली भी उतनी ही सरल और सुरुचिपूर्ण थी। अपने व्यापक अध्ययन, गहन चिंतन तथा दूरदर्शिता के आधार पर वे गंभीर से गंभीर समस्याओं का सरल, सर्वग्राही समाधान प्रस्तुत कर देते थे।

उनका जीवन एक मूर्तिकार की तरह था जो एक अनगढ़ पत्थर को अपनी कल्पना, चिन्तन के अनुरूप संवारता है तथा प्रतिभा को बनाता है और उनके विभिन्न अंग–प्रत्यंगों को गढ़ता है। उस प्रतिभा को गढ़ने में उन्होंने दिन–रात एक कर दिया तथा जब वह प्रतिमा बनकर तैयार हुई तो रात हो चुकी थी – देर रात और मूर्तिकार भी पूर्णतया थक गया था,

''मैं अब बहुत थक गया हूं'' किंतु फिर भी वह उसकी एक झलक देखने के लिये भोर की प्रतीक्षा करने लगा।

प्राची के स्वर्णिम प्रभात में उस प्रतिमा को देख कर वह अवाक् रह गया। प्रतिमा में मुस्कराते हुए उस अदृश्य परमशक्ति का साकार रूप प्रतिबिम्बित हो रहा था। भावविह्वल वह उसे निहारता रहा – निहारता रहा– निहारता रहा। अंत में उसने परमशक्ति के समक्ष सिर झुका दिया और ध्यानस्थ हो गया।

भाई अविनाश जी का जन्म 10–08–1922 को लखनऊ के एक कुलीन, संभ्रान्त परिवार में हुआ था। पितामह स्वर्गीय श्री मुक्ताप्रसाद जी एक लब्धप्रतिष्ठित इंजीनियर, समाजसेवक तथा शिक्षाविद् थे। पिता स्वर्गीय श्री निर्मलचन्द्र जी भी एक प्रसिद्ध राजनेता ;सदस्य उत्तर प्रदेश विधान परिषद्द्ध समाजसेवक तथा शिक्षाविद् थे। इस प्रकार महानता का गुण तो उनको विरासत में मिला था किंतु उन्होंने अपनी मेहनत, परिश्रम तथा अध्यवसाय के द्वारा विभिन्न क्षेत्राों में अपना स्थान बनाया। पहली जनवरी 2006 को लखनऊ के कमाण्ड हॉस्पिटल में अल्पावधि की बीमारी के दौरान सम्मूर्छित अवस्था में रहकर उनका निधन हुआ।

भाई अविनाश जी आप चले गये – उस राह पर जिस पर एक दिन सबको ही जाना है, किंतु क्या ऐसे भी कोई जाता है, न अपने जाने का कोई संकेत, न विदाई वचन और न ही कोई अन्तिम संदेश। फिर आपने तो हम लोगों, अपने स्वजनों, परिजनों को अपने परिवार के एक समारोह में आने का निमंत्राण भी भेजा था। आपके निमंत्राण के अनुसार हम लोग यथा समय उस समारोह में सम्मिलित होने के लिये एकत्रा भी हुए थे किंतु आपके अभावजनित अवसाद की एक गहरी छाया सारे वातावरण में व्याप्त थी। एक अव्यक्त उदासी सबके चेहरों तथा बातों से झलक रही थी। कितनी दुःखद थी वह अनुभूति जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी।

पहली जनवरी 2006 को दिवस के अवसान में वह मूर्तिकार उस परमशक्ति के चरणों में अपने को समर्पित करके सदा के लिये सो गया था।

# जीवन व्यवहार में नैतिक मूल्यों के प्रबल पृष्ठपोषक सुहृदवर !

डॉ0 सत्येन्द्र चतुर्वेदी
सम्पादक, लोकशिक्षक,
जयपुर

बह्मलीन श्री अविनाश चन्द्र चतुर्वेदी की कीर्तिशेष बाबूजी से दशकों का आत्मीय संबंध था, जिसके तार सन् 34 में सम्पन्न 'अखिल भारतीय चतुर्वेदी महासभा' के अधिवेशन से जुड़ते हैं जिसमें समाज सुधारक वृत्ति के नाते बाबूजी ने भाग लिया था और प्रभावशाली वक्तृता के द्वारा चतुर्वेदी बंधु बांधवों से प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाने का सामयिक आह्वान किया था। उस अधिवेशन में श्री अविनाश चन्द्र चतुर्वेदी के पूज्य पिताजी 'चतुर्वेदी महासभा' के मंत्री चुने गए थे। ये उल्लेख श्री अविनाश चन्द्र जी ने 'लोकशिक्षक' में प्रकाशित 'अविस्मरणीय व्यक्तित्व' लेख में किया था।

स्वयं सुसंस्कृत, प्रगतिशील तथा उदारदृष्टि संपन्न होने के नाते वे बाबूजी के बहुआयामी व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे। 'लोकशिक्षक' में प्रकाशित उनके अनेक लेख, पत्रादि से यह स्पष्ट लक्षित है। भारत के कोने–कोने से लोगों में चाचाजी के अभिनंदन, सम्मान करने की होड़ लगी थी। आज के युग में नेताओं के सम्मान का अधिकतम ह्रास हुआ है, वहीं चाचाजी इसके पूर्ण अपवाद थे। वह सभी के मित्रा, सहायक और दिग्दर्शक थे। उनका जीवन हमारे लिये प्रेरणास्रोत रहेगा। समाज सुधार, मातृभाषा प्रेम, देशभक्ति आदि बाबूजी के सरोकारों के वे सहभागी थे, इसलिये एक प्रकार से वे उनके समानधर्मा भी थे।

श्री अविनाश चन्द्र चतुर्वेदी की भारतीय जीवन मूल्यों में गहरी आस्था थी इसलिये देश समाज के नैतिक पतन से वह बहुत क्षुब्ध थे। 'लोकशिक्षक' के अगस्त 2002 के स्वाधीनता दिवस विशेषांक में प्रकाशित अपने संदेश में उन्होंने लिखा था,''स्वाधीनता दिवस की 56वीं वर्षगांठ पर लोकशिक्षक के विशेषांक प्रकाशन का आपका निर्णय बहुत महत्वपूर्ण है। एक हजार वर्ष की दासता के प्रारम्भ से ही स्वतंत्राता का युद्ध छिड़ चुका था। परन्तु वे प्रयास तितर बितर थे। मुस्लिम शासन में नैतिक मूल्यों का निरंतर ह्रास होता रहा। विगत दो शताब्दी में अंग्रेज़ी शासन में शिक्षा के प्रसार व सामाजिक एकता के प्रयासों को बल मिला। पर आज नित्यप्रति सिनेमा, टी0वी0, पत्रा–पत्रिाकाओं में स्त्रिायों के नग्न, अर्धनग्न चित्राों की भरमार रहती है, तो दूसरी ओर दलितों, पिछड़ी जातियों आदिवासियों बालक–बालिकाओं पर अत्याचार की लोमहर्षक घटनाएं अखबारों की सुर्खियॉ रहती हैं। शिक्षा, चिकित्सा, नागरिक प्रशासन का चहुॅओर स्वतंत्राता के पश्चात् बहुत ह्रास हुआ है। राजाराम मोहन राय, महर्षि दयानंद, महात्मा गांधी ने जो नई चेतना जगाई थी, स्वतंत्राता के पश्चात् विगत 55 वर्षों में हम उनसे प्रेरणा ग्रहण नहीं कर सके वरन् पीछे चले गए। भारतीय इतिहास में कहीं किसी समय भी इतना भीषण भ्रष्टाचार, स्त्रिायों को जलाया जाना, समस्त शिक्षा जगत में नैतिकता का इतना पतन नहीं हुआ है। खुलेआम 'संघ लोक सेवा

आयोग' प्रादेशिक आयोगों में भ्रटाचार है। शिक्षण संस्थाओं ने जहां विद्यालयों की फीस लाखों रुपये प्रतिवर्ष कर दी है, वहीं दूसरी ओर खुलेआम विद्यार्थियों को नकल कराने, परीक्षा प्रश्नपत्रा बेचने, परीक्षा पुस्तिकाऍं बदल जाने की घटनाऍं सबकी नज़रों तले इफ़रात से हो रही हैं।'' आपका मंतव्य था, निर्देशन भी था,''कैसे भी कितने भी कानून बनाये जायें, चरित्रा के अभाव में उनका सही पालन नहीं हो सकता। महर्षि अरविन्द ने तथा अन्य ऋषियों ने मौन रहकर भारत की स्वतंत्राता चिन्तन में अविस्मरणीय योगदान दिया। सादा जीवन, उच्च विचार सिद्धांत को अपनाकर शासन में प्रत्येक स्तर पर पारदर्शिता प्रदान कर ही नेता, जनसेवक त्याग, बलिदान से मार्ग का प्रचार–प्रसार कर सकते हैं। भारत देश का खोया गौरव पुनः प्रदान कर सकते हैं। शिक्षा, जनसेवा, सामाजिक सेवा के सभी स्तरों पर नौकरी में भ्रष्टाचार के स्थान पर ईमानदारी से जीवनयापन ही राष्ट्र का उत्थान कर 21वीं सदी में भारत को पुनः विशिष्ट पहचान दिला सकता है। इस महत लक्ष्य की पूर्ति में 'लोकशिक्षक' की विशिष्ट भूमिका है।''

'लोकशिक्षक' उनका प्रिय रुचिकर पत्रा था। वे आद्यंत उसके प्रशंसक रहे। नवंबर 02 में उन्होंने 'लोकशिक्षक' के संबंध में उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा था,''यह पत्रा–व्यवहार में चलती–फिरती गीता व साहित्य में बी0ए0, एम0ए0 स्तर की पुस्तकों के समान कविता, आलोचना की उत्कृष्ट सीमा है। अहिंसात्मक दृष्टि से इसमें सामाजिक सुधार की ओर ले जाने वाली दिशाऍं हैं। इसका प्रत्येक अंक व्यक्ति को प्रेरित करता है कि वह चारित्रिाक ऊंचाई, समाज उत्थान व देश की प्रगति पर ध्यान दे, विचार करे, मंथन करे व कविताओं और लेखों के ओज से प्रभावित होकर सामाजिक कुरीतियों के नाश की ओर अग्रसित हो जाए।''

ऐसे उदात्तमना चिंतनशील अग्रज की पुण्यस्मृति को मेरा नमन! आत्मीयजन द्वारा उनकी 'समारिका' का प्रकाशन निःसंदेह एक श्लाघनीय अनुष्ठान है।

## अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं हैं !

डॉ0 अपर्णा चतुर्वेदी 'प्रीता'
संस्थापिका/प्रकाशक, 'सूर्यकदम'
जयपुर (राज)

हमारे जीवन–दर्शन की मीमांसक–दृष्टि ये रही है कि हम सदैव कठोर–तप और संघर्षों के दरिया से गुज़रते हुए, अपने जीवन के लक्ष्य स्वयं ही निर्धारित करते आ रहे हैं। लक्ष्य–प्राप्ति के लिए प्रारंभ में

सदैव ही भौतिक उपादानों का मोह छोड़ना ही पड़ता है। शैक्षिक–योग्यता, सतत् परिश्रम और सच्चे गुरु के मार्ग–दर्शन से भी सिद्ध होती आयी है।

हमारे आदरणीय बड़े चाचाजी ;स्व0 रूप नारायण चतुर्वेदी निधिनेहद्ध छोटे चाचाजी ;स्व0 भगवतस्वरूप चतुर्वेदीद्ध पृथ्वी चाचा ;स्व0 पृथ्वीनाथ चतुर्वेदीद्ध हमारे पिताश्री ;स्व0 पं0 गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदीद्ध लखनऊ की महान हस्तियॉ में ये और बपचन में हमने आदरणीय अविनाश चन्द्र चतुर्वेदी चाचाजी को अपने घर 'हमीरपुर हाऊस' ;विजयनगर कोलोनी बांसमंडी गुरुद्वारे के पीछेद्ध था और जो हमीरपुर हाऊस अब ;पिताजी के स्वर्गवास होने के बाद, शापिंग–माल हो गया हैद्ध आकर, बैठकर पूज्य चाचाजी से घण्टों बातें करते सुना है। यही नहीं हमारे पृथ्वी चाचाजी के पास भी अविनाश चाचाजी को कई बार देखा है।

## ज्ञान से बड़ा क्या श्रंगार होता है !

इस पुष्टि–मार्गीय ज्ञान की मीमांसा हम कभी नहीं कर सकेंगे। लेकिन यह अपरोक्ष शक्ति होती है जिसने जलकुंभी जैसे जीवन–शैली में कमलनियॉ विकसित करने की क्षमता और दृष्टि दिखलायी हैं। अविनाश चाचाजी एक बार ;सन् 1965–66 की बात होगीद्ध हमारे पृथ्वी चाचाजी के पास गौतम पल्ली आए थे। तब गीता के कर्म–सिद्धांत पर घण्टों सहज रूप से दोनों में बातें होती रहीं। हम चूँकि उस दिन पृथ्वी चाचाजी के यहॉ ही थे, ड्राइंग–रूम में बैठकर ये मीमांसक–दृष्टि समझने की कोशिश कर रहे थे।

अविनाश चाचाजी छरहरे–बदन सफेद पतलून और हाफ बाजू वाली धारीदार हल्के बादामी रंग की बुशर्ट पहने हुए थे, सुनहरे फ्रेम के चश्मे में, बुशर्ट की जेब में पेन लगा था और पृथ्वी चाचाजी छोती सफेद लांगदार और कुर्ता पहने हुए थे। तब दो घण्टे बाद अविनाश चाचाजी और पृथ्वी चाचाजी, जो राज्य शिक्षा सचिव थे, यह कहते हुए उठे कि 'मनुष्य के जीवन में ज्ञान से बड़ा श्रंगार क्या होता है !' उस दिन की इस चर्चा को हमने मन की डायरी में दर्ज़ कर लिया है।

## घर को भूलकर सरग नहीं मिलता

अविनाश चाचाजी हमारे माथुर चतुर्वेदी समाज के लिए एक सक्रिय, दृष्टि वाले व्यवहार कुशल, भविष्य दृष्टा भी रहे। कितने सुयोग्य, शिक्षित, पर राह से भटके हुए नौजवानों को समाज–सेवा से जोड़ कर उनमें ये विश्वास जगाया कि देहरी की सुदृढ़ता, योग्य बच्चों से ही बनती है। परिश्रम, लगन और सही मार्ग का चुनाव ही गीता के कर्मकाण्ड का अक्षुण ज्ञान है।

'भाग्य' उन्हीं का बनता है जो सतत चिंतनशील रहे। आगे बढ़ते रहे। अविनाश चाचाजी ने अपनी सिविल चीफ़ इंजीनियरिंग की पढ़ाई वजीफ़ा लेकर पूरी की। हमारे चाचाजी के ;पिताश्री पं0 गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, जो लखनऊ के वरेण्य ब्रजभाषा कवि, उत्तर प्रदेश परिवहन – आयुक्त हो रिटायर्ड हुए, उत्तर प्रदेश परिवहन उच्च सचिव भी रहेद्ध ललित कला अकादमी – सम्मान/पुरस्कार से सम्मानित, पुरस्कृत

होने पर तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ के ब्रजभाषा पुरस्कार 'श्रीधर पाठक' सम्मान/पुरस्कार से पुरस्कृत होने पर। बस हमेशा ही अविनाश चाचाजी आते और खुले हृदय से बधाई देते। यह भी कहते कि 'अम्मा' ;हमारी दादी मॉद्ध ने बड़ी ही शालीनता और कर्मठता से अपने पॉचों बेटों व इकलौती बेटी को सुसंस्कार शिक्षा दी है, जिससे हमारा चतुर्वेदी समाज गर्व महसूस करता है। अविनाश चाचाजी ने हमारे सभी चाचाओं की तरह बेटियों की शिक्षा और व्यवहार कुशलता को हमेशा प्रोत्साहित किया है। ताकि समाज की बहूँ–बेटियॉ सगर्व ये कह सकें कि हम अमुक–अमुक घर–परिवार की हैं।

घर का सम्मान घर की बहू–बेटियों से ही हो सकता है। इस ओर हमारे अविनाश चाचाजी सदैव विश्वास करते रहे।

## प्रगतिशील दृष्टि में प्रतिबद्धता

हमारे जीवन में इस यथार्थ को कोई नहीं बदल सका है कि प्रगति घर बैठे ही मिलती है। यह दृष्टि कमजोर लोग लेकर चलते हैं। प्रतिभावान व्यक्ति नहीं/समाज, घर, योग्यता, शैक्षिक प्रचार और ईमानदारी ऐसे अस्त्रा हैं जिन्हें साथ लेकर चलने वाला व्यक्ति हमेशा विजयी रहा है।

दुर्गुणों की पहचान, कार्य–पद्धति और व्यवहार की तुच्छता से हमेशा सामने आ जाती है। इसलिए भाग्य–निर्माण में सूझबूझ का अंश भी महत्वपूर्ण है। योग्य व्यक्ति यदि सूझबूझ से सही वक्त पर सही निर्णय लेने की क्षमता नहीं रखेगा तो वह अपने वांछित पद का सुख नहीं भोग सकता। परस्पर–सहयोग की दृष्टि भी जीवन में अति महत्वपूर्ण होती है। इस तथ्य का अविनाश चाचा जी ने हमेशा हम लोगों को अपनी कार्य पद्धति से सिखाया। जो प्रगतिशील दृष्टि में कार्य, समझ, योग्यता की प्रतिबद्धता को भी दर्शाता है।

जब हम संसार में सफलता प्राप्त करने की आंकाक्षा के साथ ही अपनी योग्यताओं में वृद्धि करते रहते हैं, तभी हम स्वयं अपनी आन्तरिक योग्यताओं की स्वयं ही परख भी करने लगते हैं। यह गुण सर्वत्रा पुष्पित और पल्लिवित होता है। तभी प्रगति का ओज हमारे व्यक्तित्व की परिभाषा में परिणत होने लगते हैं।

## व्यक्तित्व का ओज हमारी सकारात्मकता सोच का परिणाम है

कर्मठ, ईमानदार इंसान पूर्ण आत्म विश्वास से ओत–प्रोत होता है। 'श्रीनगर–काश्मीर' में मेरे पति कर्नल शंभुनाथ चतुर्वेदी – एजुकेशन ऑफीसर पोस्टेड थे, तब वहॉ – 1988–89–90 में भाई नीलेन्द्र जी और पौपी उर्फ़ रेखाद्ध भी पोस्टेड थे। तब अविनाश चाचाजी और मनोहर चाचाजी – नीलेन्द्र भाई के पास ठहरे थे। हम लोगों ने उन्हें शाम के डिनर पर खाने के लिए बुलाया था।

उस दिन अविनाश चाचाजी हमारी मिनी साहित्यिक लाईब्रेरी देख बेहद खुश हुए। आशीर्वाद देते हुए कहा कि सतत प्रयत्न और सकारात्मक सोच तक बेटी यहॉ पहुॅची हो, देख–सुन कर बहुत खुशी हो चुकी है। तुम्हारे पिताजी की हिन्दी साहित्य विरासत को बड़ी शान से तुम बढ़ा रही हो।
तब हमने कहा था कि हमारी मम्मी ;स्व0 श्रीमती शारदा देवी चतुर्वेदी चन्द्रपुर,कमतरी, लखनऊद्ध की हिन्दी कहानियॉ, उपन्यास, बाल साहित्य पढ़ने की सुरुचि ने, दादी मॉ की उर्दू, फारसी, ब्रजभाषा साहित्य में रुचि और पूज्य चाचाजी ;पिताजीद्ध के ब्रजभाषा काव्य सृजन और घर में आयोजित होने वाली काव्य गोष्ठियों ने हमें बचपन से ही मोहित किया है। अब ये साहित्य – अनुराग, सृजनात्मक–सकारात्मक–विचार सुख, उत्साह देता है।
उस दिन श्रीनगर काश्मीर में अविनाश चाचाजी की ऑखों में अपने परिवार, समाज के प्रति जो आदर–खुशी देखी थी, वो अनमोल चित्रा है।
हमारे ऐसे पूर्वजों पर हमें हमेशा नाज़ रहेगा, जिन्होंने घर का वातावरण ऐसा रखा जहॉ हर बच्चा अपनी–अपनी रुचियों से हमेशा जुड़ा रहा, सक्रिय रहा। और घर के बाहर अपनी यशकीर्ति फहराने में सहायक रहा।

## अनुकरणीय, अनुसरणीय एवं अविस्मरणीय व्यक्तित्व

डॉ0 ए0के0अवस्थी
डीन, विधि संकाय,
लखनऊ विश्वविद्यालय

श्रद्धेय चाचाजी स्व0 श्री अबिनाश चन्द्र चतुर्वेदी के प्रथम दर्शन सन् 1961–62 में सीतापुर में सहपाठी बन्धुवर नीलेन्द्र के पिता के रूप में हुए थे। तदन्तर एक लम्बा अन्तराल रहा। अस्सी के दशक में 'लोकनिवास' में जब पुनः भेंट के अवसर मिले, तब उनके निकट आने और सामयिक विषयों पर विचार–विनिमय का सुयोग और सौभाग्य प्राप्त हुआ। सरकारी सेवा में अवकाश प्राप्ति के साथ ही बच्चों को व्यवस्थित करके स्वयं दोनों 'लोकनिवास' में ही रहते थे तथा परिवार, समाज, विशिष्टतया माथुर चतुर्वेदी समुदाय के क्रिया–कलापों में बढ़–चढ़कर भाग लेते थे। जो समय बचता, उसे अध्यवसाय में लगाते थे। इंस्टीट्यूशन ऑफ़ इंजीनियर्स में अंत तक प्रमुख पदाधिकारियों में रहे तथा अपनी लगन, निष्ठा तथा कार्य–शैली से अमिट छाप छोड़ी। जिस भी विषय पर वे अपने विचार रखते थे, वे

सारगर्भित, क्रमबद्ध, सुविचारित तथा तर्क की कसौटी पर इतने अकाट्य होते थे कि उनको स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रहता था। वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य में उनकी टिप्पणियॉ एक अनुभवी बुजुर्ग की ही नहीं बल्कि समसामयिक, उदारचेत्ता एवं विचारवान व्यक्ति की होती थीं जो परिवेश की मानवोचित कमियों/कमज़ोरियों के कारणों को ध्यान में रखते हुए उनके सटीक हल भी प्रस्तुत करती थीं।

स्वर्गवास से कुछ वर्ष पूर्व उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय की कोर्ट की सदस्यता हेतु चुनाव में भाग लिया था। इस संदर्भ में उनके साथ विश्वविद्यालय की वर्तमान स्थिति, शिखा के गिरते स्तर तथा कैम्पस में बढ़ती अराजकता के कई आयामों पर चर्चा हुई। उन्होंने न केवल इस गिरावट के कारणों को एक–एक कर व्याख्यायित किया बल्कि विश्वविद्यालय की क्षरित होती स्वायत्तता तथा उसमें राजनीति और नौकरशाही की बढ़ती पैठ पर चिन्ता व्यक्त की थी। उनका मानना था कि इन स्थितियों से निपटने के लिये शिक्षकों को एकजुट होकर प्रयास करना होगा तथा अपने को पठन–पाठन एवं अनुसंधान में व्यस्त करना होगा। उन्होंने लगभग चेतावनी देते हुए कहा था कि यदि शिक्षकों ने सस्ती स्वार्थपरता के चलते समाज को नेतृत्व देने के अपने महती दायित्व से मुँह मोड़ा तो उदात्त मानव–मूल्यों का पोषण नहीं हो पायेगा तथा बिखराव, अलगाव व कुंठा के बीज उर्वर भूमि पायेंगे। उनका कहना शाश्वत सिद्ध हो रहा है।

वे 'सादा जीवन, उच्च विचार' के जीते–जागते उदाहरण थे। कभी किसी के प्रति कटुता, शिकायत और नराज़गी सुनने को नहीं मिली। हमेशा सहायता करने को तत्पर रहते थे। एकाधबार उनकी सहायता लेने का अवसर आया, जिस पर उन्होंने सहज भाव से आत्मीयता के साथ भरसक सहयोग किया। सफलता तो मिलनी ही थी। वे एक अनुकरणीय, अनुसरणीय व अविसमरणीय व्यक्ति थे। हमारी विनम्र श्रद्धांजलि!

# स्व0 चतुर्वेदी जी की स्मृति में

विंग कमाण्डर कमलेश प्रसाद गुप्ता

गत जून महीने में स्व0 चतुर्वेदी जी वायु सेना स्टेशन आवाडी आए और दीवाली यानि लगभग छह महीने बाद लखनऊ चले गए। स्व0 चतुर्वेदी से मेरी मुलाकात प्रायः रोज दो घंटे के लिये हो जाया करती थी जिसमें हम सभी साथ–साथ योगाभ्यास करते और उनकी अनुभव की बातें सुनते। स्व0 चतुर्वेदी एक सीधे–सादे, सरल एवं प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उनकी सादगी, समय पालन और सेहत के लिये व्यायाम हम सभी के लिये एक उदाहरण है। घनघोर वृष्टि में भी वे छाता लेकर ब्रह्म बेला एवं संध्या समय अवश्य सैर के लिये जाया करते थे। सैर–सपाटे के दौरान कोई भी मिल जाये और थोड़ी भी जान–पहचान होने पर उसी की भाषा में अभिवादन जरूर करते थे। हिन्दू होने के बावजूद भी सर्व–धर्म को एक समान श्रेय एवं आदर देते थे। गिरजाघर में रविवार के दिन समय निकालकर अवश्य जाते थे।

उत्तर प्रदेश राज्य के सिविल इंजीनियरिंग की नौकरी से कई वर्ष पहले सेवानिवृत हो गये थे ; मगर जब भी अपने विभाग की चर्चा करते तो ऐसा प्रतीत होता था कि स्व0 चतुर्वेदी की स्मरण–शक्ति एक आधुनिक कम्प्यूटर की भांति काम करती थी। उनकी प्रबल इच्छा थी कि अपने विभाग के कुछ महत्वपूर्ण लेखे–जोखे का विश्लेषण कर बुद्धिजीवी व्यक्तियों में प्रस्तुत करना। यहां पर उन्होंने कम्प्यूटर वालों से बहुत आग्रह किया और बहुत दिन लगाये परन्तु पेपर टाइप न हो सका। हमने थोड़ी मदद इस काम में की और लगभग 100 पन्ने टाइप करवाये। उनका मसौदा जिस कागज पर लिखा रहता था, वह कागज पूरा भरा रहता था। एक तिल रखने की भी जगह नहीं छोड़ते थे। इसी टाइपिंग के सिलसिले में हमारे आग्रह पर हमारे कार्यालय चार बार आये। बहुत आग्रह पर सिर्फ एक गिलास नींबू–पानी पीते थे और बहुत ही कम समय के लिये रुकते थे। उनका कहना था कि कभी भी किसी का समय बर्बाद नहीं करना चाहिए। उनकी अपनी सोच थी कि कभी भी दूसरों का कुछ खाना–पीना नहीं लेना चाहिए। आदमी ऋणी हो जाता है।

किसी भी विषय पर जब चर्चा होती थी तो उनके सामने हम कभी टिक नहीं पाते थे। उनकी जानकारी हर क्षेत्रा में अपार थी। उन्हें सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी बहुत दिलचस्पी थी। वे कलाकारों की प्रशंसा अवश्य करते थे। इस उम्र में भी उनमें नई बातें सीखने की भरपूर ललक थी। कहानी किताब तो प्रायः रोज पढ़ लिया करते थे। अखबार की हर पंक्ति पढ़ा करते थे। समाचार के सिवाए टेलीविजन पर अपनी इच्छानुसार सीरियल अवश्य देखते थे। आवश्यकतानुसार ही खर्च करते थे। उनका प्रयास होता था कम खर्च में काम चलाना। फिजूलखर्ची में उनका विश्वास नहीं था। हमेशा मुस्कराते रहते थे और फौजियों को विशेष आदर देते थे।

स्व0 चतुर्वेदी एक महान इन्सान थे। उनके बारे में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। 31 दिसम्बर 2005 को उन्होंने अन्तिम सॉस ली। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें।

# ''ऐसे भी हुए हैं लोग''

विवेक सनाढ्य

1/41 रजनीखण्ड, शारदा नगर,

रायबरेली रोड, लखनऊ – 226002

इन पंक्तियों को लिखने में विलम्ब के लिये मन खिन्न हो रहा है, आलस्य और टालने की प्रवृत्ति पर क्षोभ हो रहा है। यह केवल एक महान आत्मा को याद करने या उनके विलग होने के कारण नहीं है अपितु जिसको हम स्मरण कर रहे हैं, उसने अपने तमाम जीवन में इन दुर्गुणों से संघर्ष किया। फिर भी परम पूज्य स्वर्गवासी अबिनाश चन्द्र चतुर्वेदी ;चाचाजीद्ध से क्षमा याचना करते हुए मैं उन्हें कुछ इस प्रकार से याद करूंगा।

महान विभूति श्री चतुर्वेदी जी की स्मृति में उनके जीवन पर कुछ कहना, लिखना या बोलना उनके व्यक्तित्व या कृतित्व के साथ नाइन्साफी करना होगा। उनके बारे में कहना, लिखना या बोलना शाब्दिक या ऐन्द्रिक ज्ञान से परे है। उनका समूचा जीवन एक 'अहसास', एक पवित्रा अहसास था जिसको कर्म में परिवर्तित करना सामान्य आदमी के बस की बात नहीं। उनके जीवन का मूल्यांकन या आंकलन क्या, उस तरफ झांकना भी एक असाध्य कार्य होगा।

चतुर्वेदी जी सार्वजनिक, भौतिक मूल्यों को अधिक तरजीह देते थे। उनके लिये यह आवश्यक था कि ''क्या किया जाना चाहिए'' और ''क्या नहीं किया जाना चाहिए'' – और उनकी इस आवश्यकता के मूल में आदमी की वर्षों की सत्यता और क्रियात्मकता पर परखा गया प्रयोगात्मक इतिहास था। वे तहज़ीब और तरक्की पसंद थे। आधुनिक भी थे, पर इसके साथ–साथ वे जीवन के इन अवयवों को रेखांकित और सीमांकित करने में भी यकीन करते थे। चीजों में 'उत्कृष्टता' या 'एक्सेलेंसी' और 'क्लास' में उनका दखल ज्यादा रहता था। वे चीज़ों की ष्दजतपदेपब टंसनमेष् में ज्यादा विश्वास करते थे।

अनवरत सीखने, सिखाने, जानने, परखने और सृजन में उनकी रुचि अधिक थी। सिद्धांतों, विचारों और मसलों के आरोपण से परहेज़ रखने का सदैव उनका प्रयास रहता था। श्रद्धेय चतुर्वेदी जी से एक बार मिलने पर किसी का प्रभावित हो जाना इतना मायने खेज़ नहीं था, जितना बार बार मिलने की प्यास लेकर जाना। उनसे मिलने के बाद आदमी उनके द्वारा चिन्हित कुछ बिन्दुओं और बारीकियों पर बार बार सोचता था और फिर उस पर सकारात्मक निर्णय लेकर भविष्य में सजीव क्रियान्वन के लिये स्मृतियों में संचित कर लेता था। वाणी में लाभदायक परोपकारी कठोरता थी, जो लम्बे अन्तराल के बाद अपना प्रभाव दिखाती थी। वे आचरण में सत्यनिष्ठा, बड़प्पन और सार्थकता खोजने की बातें करते थे।

उनकी स्मृति एक बड़ी गहरी झील थी जिसके आस–पास विचरण करने पर न जाने कितने मनमोहक विहंगम दृश्यों के दुर्लभ दर्शन होते थे। उनके द्वारा वर्णित संस्मरणों में आत्मप्रशंसा व शेख़ी तो भूलकर भी स्थान नहीं पाते थे। उनके हिसाब से निजी व सार्वजनिक जीवन कुन्दन या हीरे के तुल्य तभी हो सकते हैं जब उन्हें कठोर नियम, अनुशासन, त्याग व धनात्मक मानवीय मूल्यों की कसौटी पर कसा गया हो।

उनकी हठी और सुदृढ़ अनुशासित काया कभी–कभी क्रोध और विरोधाभासों का झीना पारदर्शी आवरण ओढ़ लिया करती थी जिसके नीचे तमाम भावावेग चेहरे पर छुप जाया करते थे, पर श्रद्धा और नमन के हल्के झोकों से सहज ही ये आवरण उतरते थे और जल्दी ही एक क्षमाशील और सरल व्यक्ति हमारे सामने होता था।

चींटी के चलने की प्रवृत्ति, हर समय कुछ ढूंढने की कोशिश उनके शरीर और मस्तिष्क दोनों में थी। न जाने कितनी ऊर्जा थी उनमें चीजों को करने की और उन्हें सोचने की। दया और करुणा जहॉ आवश्यक है, हर वक्त के हर कदम पर साथ थे उनके। जिन्होंने जीवन भर उनका साथ दिया। ईमान तो जैसे उनका पर्याय था। सिर से पॉव तक ईमानदारी का मुजस्सिमा – और सही मायने में देखा जाये तो मुसल्लम ईमान् भी कहा जा सकता है ऐसे इन्सान को जिसके आगे बड़े–बड़े ईमान वाले भी तौबा कर सकते थे। ईमान के साथ चिन्तकों ने एक चीज़ इतिहास में और फर्मायी है, वह है नेकनीयती और नेकमंशा, मशीयत या मजौकी। ईश्वर गवाह है कि इस नेकनीयती और मलमंशगी की गैरमौजूदगी में बड़े बड़े ईमानदारी के बेड़े गर्क हो गये हैं। बेहद ईमानदार चतुर्वेदी जी ईमान से वफ़ा ज़रूर करते थे लेकिन एवज़ में कोई दरकार नहीं थी। मैं अगर यह कहूँ कि उन्हें ईमानदारी का एक जुनून था। उनके लिये ईमानदारी की कोई सीमा नहीं थी। उनके लिये 'सावन को आने दो' के निदेशक 'कनक मिश्रा' का एक शेर मुझे याद आता है, बड़ा माफ़िक है –

– जुनूं को इस हद तक जुनूं के आगे ले जाओ
कि दीवाना खुद हॅस के कहे कि ये दीवाना है –

स्पष्टवादिता और साफगोई उनकी छुपी ताकत थी। वे बेझिझक माकूल बातों को सामने रखते, चाहे व्यक्तिगत जीवन में छोटे से कहना हो या बड़े से। प्रशासनिक मामलों की बयानबाजी हो या सार्वजनिक जलसों में शिरकत हो, अगर कहीं भी घपलेबाजी है या वस्तुओं को घुमाफिराकर गोल करने की कोशिश की जा रही है तो वे परिणाम की चिन्ता किये बगैर हस्तक्षेप करते जरूर थे। ऐसे लोग मैंने जीवन में देखे ही नहीं हैं या बहुत कम।

इसी सिलसिले में मुझे एक बार की एक छोटी सी घटना याद आ रही है – लगभग दो वर्ष पूर्व उनके सबसे छोटे बेटे सुशील चतुर्वेदी, जो मेरे कार्यालय के सहकर्मी भी हैं, ने मुझे सूचित किया कि पापा थोड़ा दुर्घटनाग्रस्त हो गये हैं और अल्प चिकित्सा के बाद अब स्वस्थ हैं, मैंने उनके दर्शन करना उचित समझा। और उसी दिन उनके चारबाग आवास 'लोकनिवास' पर पहुँच गया। द्वार के बाहर लॉन में एक कुर्सी पर बैठे धूप का स्वाद ले रहे थे और किसी अखबार या रिसाले को खंगाल रहे थे। चरणाभिवादन

के बाद मैं उनके समीप वहीं बैठ गया। पॉच सात मिनट में लगभग काफी विषयों पर बात हुई। उन्होंने मुझसे पूछा, कार्यालय अभी जाना होगा। मैंने उत्तर दिया, 'हॉ'। वे हमारे भोजनावकाश का समय जानते थे। सवा दो बजे तक! उन्होंने घड़ी देखी तीन बज चुका था। पौन घंटे भोजनावकाश के बाद हो चुके थे। उन्होंने तुरन्त कहा ... ;अंग्रेज़ी मेंद्ध आप मुझे देखने आये इसका धन्यवाद। आप मेरे शुभचिन्तक और खैरख्वाह है इसका भी मुझे इल्म है और इसके लिये मैं बहुत आभारी हूॅ और आपकी शुभकामनाओं से मैं अब स्वस्थ हो रहा हूॅ। आपके भोजनावकाश का समय सम्भवतः अब समाप्त हो चुका है और शायद यह समय आपके कार्यालय में उपस्थित रहने का है। मैं अवाक रह गया, पूरे जिस्म में नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तरंगे जाती और आती थीं। क्षणों में मैं संयत हो गया और कुछ दिन बाद फिर कार्यालय समय के अतिरिक्त उसी समग्र भाव से मिला।

उनका एक और आग्रह लोगों से रहता था कि आप दूसरों को क्या दे रहे हैं, यह आवश्यक है। यह नहीं कि आपको हमेशा कुछ मिले। समाज और राष्ट्र को तो वे कुछ देने की भी बात करते थे। यहॉ पर एक बात मैं और कहना चाहूॅगा, नई पीढ़ी की बदहाली के लिये वे पुरानी पीढ़ी को जिम्मेदार मानते थे। उनका मानना था कि पुराने सिर्फ नुक़्ताचीनी करके अपना दायित्व खत्म हो जाने का अहसास न करें। अपितु लगातार इन्टरएक्शन और संवाद के जरिये मामलों को बढ़ाये रखें। छोटों से झटकार या कभी–कभी तिरस्कार के बाद भी गतिहीनता न आने दें और लगातार उन्हें खबरदार करते रहें कि यह गैर जरूरी है ... इस पर चलने से जलोगे क्योंकि मैं भी जल गया था और उस पर चलोगे तो साफ़ पहुॅच जाओगे दूसरी ओर मंजिल की तरफ़।

लिखने–पढ़ने ओर वैचारिक आदान–प्रदान का उन्हें बहुत ख्याल रहता था। मानवीय मनोवेगों की बहुत पहचान थी उन्हें। उन्हें इस बात का सहज ज्ञान रहता था कि उनके परिचितों की फेहरिस्त में कौन किस प्रकार का व्यक्ति है। ढेरों पत्रा–पत्रिाकाओं की जिम्मेदारी वे किसी न किसी रूप में निभाते थे। उनके पास तकनीकी, गैर तकनीकी और न जाने कितने प्रकार की पुस्तकों और संग्रहणीय सामग्री का एक बड़ा ज़खीरा था, जो उनकी प्रिय निजी संपत्ति थी। इस बेजोड़ आदत के पीछे उनकी मंशा साफ़ थी कि वक्त जरूरत आगे आने वाली पीढ़ी को यह सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जाये और वह भी इसी प्रकार ज्ञान संचित करने और उससे लाभान्वित होने का सिलसिला कायम रख सकें। ऐसे में ग़ालिब की पंक्तियॉ बरबस मस्तिष्क में उभरने लगती हैं –

चन्द तस्वीर–ए–बुतां, चन्द हसीनों के खतूत
बाद मरने के मेरे घर से ये सामां निकला

आज की जिन्दगी में अगर उनको उतारा जाये तो बहुत अर्थपूर्ण हो सकता है जीवन। उनको याद कर उनके बारे में आदि, मध्य और अन्त करना बहुत ही मुश्किल काम है। फिर भी यदि हम अपने निजी जीवन या सार्वजनिक जीवन या जीवन के किसी भी हिस्से में उनके जीवन दर्शन का एक अंश भी उतार लेते हैं तो यकीन मानिए बहुत ही फायदे में रहेंगे और जीवन सार्थक हो जाएगा। मेरे ख्याल से उनके जीवन के लिये अलामा इकबाल की ये पंक्तियां बहुत ही माफिक हैं –

''हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पर रोती है, बडी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा''

# अबिनाश चन्द्र जी : एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व

दिलीप चतुर्वेदी

303, नूतन आवास, भटार रोड, सूरत ;गुजरातद्ध

आदरणीय अविनाश चन्द्र जी, जिनको मैं 'पापा' कहकर सम्बोधित करता था, की मृत्यु का दुःखद समाचार एक जनवरी 2006 नए साल के प्रारम्भ के दिन मिला – हम सब स्तब्ध हो गए। मुझ पर उनका असीम स्नेह रहता था।

ये मेरा सौभाग्य रहा कि पू0 पापा 1984 में जब बड़ौदा इंस्टीट्यूशन ऑफ़ इंजीनियर्स की वार्षिक सभा में भाग लेने के लिये आए थे, तब दो दिन के लिये सूरत आने का मेरा निमंत्राण उन्होंने स्वीकार कर लिया। सूरत की ऐतिहासिक इमारतें और मुख्य जगहें उन्होंने बड़ी रुचि से देखीं। मम्मी के लिये उन्होंने मुझसे गार्डन की साड़ी पसन्द करवायी।

पू0 पापा बहुत ही सरल, ईमानदार तथा अपने को सदा व्यस्त रखने वाले इन्सान थे। उन्होंने कभी भी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया। अपनी लगन, मेहनत व ईमानदारी के कारण ही वे सिंचाई विभाग में सर्वोच्च पद पर पहुँच पाये और वहॉ अमूल्य योगदान दिया। समय के साथ उन्होंने पुरानी रीतियों पर नये सिरे से अमल किया। अपने छोटे पुत्रा सुशील का विवाह उन्होंने दिन के समय में किया। वे फालतू खर्च आडम्बर के सदैव विरोधी रहे। मुझे याद है उनके घर में जब कभी चर्चा होती थी कि फलॉ–फलॉ अधिकारी को भ्रष्टाचारी होते हुए भी पदोन्नति मिल रही है, उस बात पर वे अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते थे। हॅसकर कह देते थे कि भाई गलत काम करने का उसका कोई अपना नजरिया होगा।

मेरी बड़ी बहन की शादी मथुरा में हुयी थी। पू0 पापा उस समय मथुरा में कार्यरत थे। अकसर मेरी बड़ी बहन को घर बुलवा लेते थे और उससे मिल आते थे। मेरे बाबा को उसके राजी खुशी के समाचार देते थे। आपसी सम्बन्धों को वे पूरी आत्मीयता के साथ निभाते थे।

मैं जब भी सूरत से लखनऊ जाता था, उनके साथ मिलना मेरे लिये परम आवश्यक था। विभिन्न विषयों पर चर्चा होती थी। टेक्सटाइल उद्योग के आधुनिकीकरण के बारे में वे पूरी जानकारी लेते थे।

मुझे अच्छी तरह याद है कि अवकाश प्राप्त के बाद भी उन्होंने अपने को समय के हिसाब से ढाला और सरकारी सुविधाओं के गुलाम नहीं होने दिया। उनके ज्येष्ठ व द्वितीय पुत्रा नीलेन्द्र व अशोक की बरात बम्बई गयी थी। 1976 की बात है। बरातियों की संख्या कम करनी थी। मैंने उनसे कहा था कि मेरे छोटे भाई प्रदीप को ले जाइये। उसने बम्बई शहर नहीं देखा है। आप हर परिवार से रिश्तेदारी में से एक व्यक्ति ले जाना चाहते हैं। मैंने तो बम्बई कई बार देखा है। उन्होंने तुरन्त मुझसे कहा था कि नियम में फेरफार भी तो हो सकता है, मुझको चलना ही पड़ेगा। ये उनके स्नेह व आत्मीयता का उदाहरण है।

# श्री अविनाश चन्द्र जी चतुर्वेदी
# की मधुर स्मृति में

श्रीमती हंसबाला

सी – 202, सुजाता शापिंग काम्पलेक्स

नव घर रोड, भयन्दर ;पूर्वद्ध, मुम्बई ;बम्बईद्ध 400105

आदरणीय पापाजी के मिलनसार स्वभाव का अनुभव हमें पहली बार तब हुआ, जब हमारी छोटी बहन नीलम और सुशील बाबू के ;बुधवार, दिनांक 29 अप्रैल 1992 कोद्ध शुभ–विवाह में वे लोग बारात ले कर आए थे। यह विवाह हमने अपनी बहन आशा और जीजाजी श्री प्रभात कुमार जी के लखनऊ स्थित रेलनगर के घर से किया था। इस विवाह में हम सभी मुम्बई से गए थे और लखनऊ–कानपुर–मुरादाबाद से हमारे आदरणीय मामा–गण/मामियॉ/मौसी तथा भाई–बहन सम्मिलित हुए थे। हमारे बड़े ताऊजी आदरणीय श्री देवीदयाल जी भरतपुर से लखनऊ पधारे थे। प्रसन्नता का वातावरण था। अचानक आदरणीय पापा जी आए और उन्होंने हमसे कहा कि हमें अपने परिवार के सभी सदस्यों से परिचित कराइए। हमने उनका सभी से परिचय कराया। सभी ने उनके चरण–स्पर्श किए। उन्होंने सभी को गले से लगाया और कहा कि,"आप सबसे मिल कर हमें बहुत अच्छा लग रहा है।" उनके इस कथन से हम सभी गद्गद् हो गए। तत्पश्चात् उन्होंने कहा कि,"पूरा परिवार खड़ा हो जाए तो सबके साथ फोटो खिंचवा ली जाए।" हम सबकी उनके साथ समूह–फोटो खींची गई। उस दिन इतनी आत्मीयता पापाजी से मिली कि आनन्द आ गया। वैसे यहॉ पर ये कहना विषयान्तर नहीं होगा कि उनके परिवार की आत्मीयता का अनुभव हम पहले भी कर चुके थे, जब मुम्बई में हम श्री नीलेन्द्र जी ;श्री सुशील बाबू के ज्येष्ठ भ्राताद्ध और उनकी धर्म पत्नी श्रीमती रेखा जी से मिले थे। उस स्नेह मर्म भेंट को हम आज भी याद करते हैं।

उसके बाद अगली बार उनकी लखनऊ चार–बाग की कोठी में जब दिनॉक 1 मई 1992 शुक्रवार को नव–दंपति का स्वागत–समारोह हुआ था, उस दिन हमारी भेंट पापाजी और मम्मीजी ;सुशील बाबू की आदरणीय माताजी श्रीमती प्रमिलाजीद्ध से भी हुई। इतने सारे मेहमानों के बीच भी उन दोनों ने हम लोगों का विशेष ध्यान रखा। जब हम लोगों ने मंच पर वर–वधू से भेंट कर ली, उसके बाद पापाजी हमें स्वयं भोज–स्थल तक ले गए और निर्देश दिया कि अब आप सब भोजन का आनंद उठाएं। भोजन के पश्चात् कुछ समय पापाजी और मम्मीजी ने हम लोगों से स्नेहपूर्वक वार्तालाप किया और फिर हम सब वापस आ गए।

चाहें बच्चे हों या बड़े, वे सभी के साथ एकात्म हो जाते थे। लगता ही नहीं था कि उनके साथ किसी तरह की दूरी है, क्योंकि कुछ वर्षों बाद जब पापाजी, मम्मीजी के साथ, श्री नीलेन्द्र जी और श्रीमती रेखाजी के घर मुम्बई पधारे, तब हमारे घर कुलाबा भी आए और हमारे छोटे भाई चि0 आशीष, उन्हें

अपने घर हमारे मम्मी–पापा के पास ले गए। वे केवल मम्मी–पापा के यहॉ ही नहीं, बल्कि हमारी छोटी बहन मंजुला के घर भी गए। तीनों परिवारों में सभी बच्चों ने उन्हें अपने–अपने चुटकुले सुनाये और उन्होंने हल्के–फुल्के मज़ाक के साथ, वातावरण को रंगीन बनाया।

अगली बार, जब वर्ष 1997 में हम चारों, हमारी बिटिया नेहा, बेटा निशांत और उनके डैडी श्री अशोक जी लखनऊ में सबसे मिलते हुए नैनीताल जा रहे थे तब आदरणीय स्व0 श्री परमेश चाचाजी ने, जो हमें लखनऊ के 'अमौसी' विमानस्थल पर अपनी कार से लेने आए थे, कहा कि ''भाईसाहब और भाभी, घर पर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'' रास्ते भर हम लोग पापाजी और मम्मीजी के ही बारे में बातचीत कर रहे थे, और जब हमने परमेश चाचाजी को बताया कि ''पापाजी, मम्मीजी से जब–जब हम मिले हैं, ऐसा लगा है कि पेड़ की घनी छाया के नीचे पहुॅच गए हैं,'' तो उन्होंने कहा कि ''इसमें दो राय नहीं है।''

आगे हम यह भी कहना चाहेंगे कि पापाजी और मम्मीजी के जिस मिलनसार स्वभाव का हमें अनुभव हुआ – वही उनके पूरे परिवार में कूट–कूट कर भरा हुआ है।

जब हम लोगों को पापाजी के अस्पताल में भर्ती होने की खबर मालूम हुई तो हमारे परिवार में भी सभी चिन्तित हो उठे। हम इतनी दूर से यही प्रार्थना कर रहे थे कि परमपिता परमात्मा उन्हें यथाशीघ्र अच्छा करें कि वे अपने घर वापस आ जाएॅ। परन्तु परमात्मा को तो कुछ और ही चाहिए था। उनके कैलाश–वास का समाचार सुन कर, मन सम्हला नहीं, और बहुत ही रोना आया।

जब कोई स्नेही सामने होता है, तो ऐसा लगता है कि कभी न कभी उनसे मिलेंगे, किंतु पापाजी के जाने के बाद पापाजी ऐसा लगता है कि वे सारे दरवाज़े बंद हो गए ; जहॉ से आप तक पहुॅजा सकता था और कभी–कभार ही सही, आपके सत्संग का आनन्द उठाया जा सकता था। पापाजी आप जहॉ कहीं भी हैं, हमें मालूम है कि आपकी स्नेह भरी ऑखें हम सब को देख रही हैं।

अश्रुमय समर्पण के साथ यह श्रद्धांजलि!

## लखनऊ मण्डल के भूतपूर्व अध्यक्ष
## अबिनाश चन्द्र जी की स्मृति में

**मेजर जनरल नीलेन्द्र कुमार**

लखनऊ मण्डल के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ0 अबिनाश चन्द्र जी के पहली जनवरी 2006 को निधन से समाज का एक स्तम्भ, मार्गदर्शी और हितैषी नहीं रहा। चौरासी वर्ष की आयु में, अल्प समय की बीमारी के बाद, लखनऊ के कमाण्ड हॉस्पिटल में नए वर्ष की शुरुआत का दिन उनके प्रतिष्ठित और उपलब्धिपूर्ण जीवन का अन्तिम सिद्ध हुआ।

अबिनाश चन्द्र जी के पिता निर्मल चन्द्र जी 'चतुर्वेदी' पत्रिाका के सह सम्पादक, महासभा के मंत्राी तथा फिर अध्यक्ष रहे थे। अपने विद्यार्थी जीवन से ही अबिनाश जी स्थानीय मन्डल और समाज के विभिन्न कार्यकलापों में सक्रिय भाग लेने लगे। समाज के हर सामूहिक कार्यक्रम में उन्होंने योगदान दिया। लखनऊ के स्थानीय मण्डल के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने वर्षों तक रचनात्मक और सकारात्मक भूमिका का नमूना पेश किया।

उत्तर प्रदेश के सिंचाईं विभाग में विभिन्न पदों पर कार्यरत रहते हुए तथा बाद में लघु सिंचाई विभाग के चीफ़ इंजीनियर के ओहदे से उन्होंने मेहनत, कार्यकौशल तथा कर्तव्यनिष्ठा की मिसाल दी। साथ ही समाज के बांधवों को नौकरी दिलवाने तथा तरक्की के लिये खुले दिल से सहायता दी। रायबरेली, प्रतापगढ़, चन्दौसी, फैजाबाद, सीतापुर, कालागढ़, मुरादाबाद, लखनऊ और देहरादून में अपने कार्यकाल के दौरान विभाग के कर्मचारियों तथा अन्य को तकनीकी शिक्षा का अवसर देने का उल्लेखनीय कार्य किया। बाद में इंस्टीटयूशऩ ऑफ़ इंजीनियर्स तथा इंस्टीटयूशऩ ऑफ़ वेल्यूअर के सभापति के रूप में नए उदीयमान प्रत्याशियों को आगे बढ़ने का अवसर देने के लिये वह सदा कटिबद्ध रहे।

दस अगस्त 1922 को लखनऊ में जन्मे अबिनाश चन्द्र जी का व्यक्तित्व सादगी, परिश्रम और अध्ययन का परिचायक था। अपने सहज स्वभाव और दूरदर्शिता से वह सामूहिक समस्याओं के निवारण के लिये प्रायोगिक सुझाव देते थे। सामाजिक प्रश्नों पर उनके विचार व्यवहारिकता और नैतिक निष्ठा पर आधारित मूल्यों का गठ बन्धन होते थे। अपने निधन से दस दिन पहले तक वह अपने परिवार और जाति के सब समारोहों में शरीक होते रहे।

समाज के जागरूक सदस्य के रूप में जातीय पत्रिाका और अन्य प्रकाशनों के माध्यम से अपने विचार वह पिछले सात दशकों से उजागर करते रहे। विश्व साहित्य तथा तकनीकी विषयों की जानकारी के कारण वह अपनी बात सरल और सुबोध शब्दों में व्यक्त कर देते थे। उनके अनगिनत लेख, संस्मरण, पुस्तक समीक्षाएं और सम्पादक के नाम पत्रा उन प्रकाशनों के पृष्ठों में उनकी याद ताजा रखेंगे। किसी विवाद से परे सरल और शिष्ट शैली में उनके विचार सारगर्भित होते थे।

पुराने मापदण्डों से प्रेरित होते हुए भी वह आधुनिक सुधारवादी प्रयासों के हिमायती थे। चतुर्वेदी समाज और पत्रिाका के कार्य कलापों में उन्होंने तन, मन और धन से सहयोग दिया। अपव्यय और दिखावे के विरोध में वह कभी स्पष्टवादिता से पीछे नहीं हटे। सादगी, सुसंस्कृत और सरल व्यवहार के मूर्तिमान स्वरूप की उनकी स्मृति हम सबके ह्रदयों में सदैव साकार रहेगी।

## यादें ... केवल यादें

### एयर कोमोडोर अशोक कुमार

पापा नहीं रहे ... नश्वर शरीर, उस लौकिक संसार से आवागमन था। शाश्वत सत्य – सब कुछ जानते हुए भी उस कटु–सत्य पर विश्वास करने, उसे स्वीकारने में बहुत समय लगेगा, संभवतः आयु–पर्यंत

भी। झुठलाने के लिए यादों की अपार, अमोल निधि भी तो है जो हमारे पापा अपने अद्वितीय, तेजस्वी, ''अजात शत्रु'' व्यक्तित्व, अपने सहज–सरल, अपनी उपलब्धियों के माध्यम से हममें से हरेक के पास भरपूर छोड़ गए हैं।

यहॉ हमारा उद्देश्य उनका जीवन परिचय/वृतांत, उनकी बेमिसाल उपलब्धियों का वर्णन करना नहीं अपितु अपने प्रिय, अपने आदर्श पापा की ढेर सारी यादों में से कुछेक के बारे में, जो रह–रहकर स्मृति–पटल पर ''फ्लैश'' करती रहती हैं, लिखना है।

यादें भी ऐसी कि कुछ धूमिल, कुछ अस्पष्ट लेकिन अधिकांश बिल्कुल साफ – जैसे कल ही की बात हो और वह किसी भी क्षण, कहीं से पुनः हमारे सामने हमारे बीच होंगे। पॉच दशकों से ऊपर की इन मिली–जुली यादों में ;संभवतःद्ध 15 मई 1960 की वह शाम स्मृति–पटल पर साफ अंकित है। उन दिनों शिक्षा–पाठ्यक्रम के अनुसार, कम से कम उत्तर प्रदेश में, प्रतिवर्ष 14 मई को परिणाम घोषित करने के बाद अधिकतर विद्यालय आठ जुलाई तक ग्रीष्मावकाश के लिए बंद हो जाते थे। पॉचवीं कक्षा में प्रथम आने पर हमने पुरस्कार–स्वरूप पापा से एक फुटबाल की मॉग की थी। पंद्रह मई की शाम यथावत् हम बच्चे लोकनिवास के बगल की गली में खेल रहे थे कि कहीं से पुकार लगी कि पापा दफ्तर से आ गए हैं और साइकिल पर एक फुटबाल भी टंगी है। बस फिर क्या था...!

एक विशाल संयुक्त परिवार में बीते अपने बचपन की यादों में यह भी है कि घर पर, पापा का अधिकांश समय अपने बाबा/दादी अथवा हमारे बाबा के साथ बीतता था। अपने बाबा ;स्व0 मुक्ताप्रसाद जीद्ध के प्रति पापा के हृदय में अपार आदर था जिसकी झलक हम लागों को पापा के अंतिम दिनों तक प्रायः रोज ही मिलती थी। संभवतः उनके बाबा ही सदैव पापा के आदर्श रहे। अपने महाप्रयाण के दो महीने पहले तक आवडी ;चेन्नईद्ध में लगभग पॉच महीने के प्रवास के दौरान पापा बहुधा अपने बाबा व हमारे बाबा ;स्व0 निर्मल चन्द्र जीद्ध के स्मृति–ग्रंथों को तल्लीनता से पढ़ते थे और फिर विभिन्न पहलुओं, घटनाओं एवं विषयों पर विस्तार से, भाव–विह्वल होकर मम्मी और हम लोगों से चर्चा करते थे। तिरासी वर्ष की आयु में भी अपने बाबा एवं पिताजी के प्रति पापा के हृदय में अपार आदर, प्रेम और श्रद्धा थी। अपनी दादी व मॉ के स्नेह की यादों को भी वह बड़े प्रेम और सम्मान से हम सबके साथ बॉटते थे।

उन प्रारंभिक वर्षों से लेकर अंतिम दिनों तक पापा के व्यक्तित्व की एक अन्य विशेषता, हमारी दृष्टि में रही – परिवार में सभी बड़ों के लिए बेहिसाब आदर एवं प्रेम, चतुवेदी समाज की विभूतियों, गण्यःमान व्यक्तियों के जीवन–परिचय, उनकी उपलब्धियों को जानने और उसकी चर्चा करने में अपार आनंद लेना। ऐसे कितने ही महापुरुषों ;डिप्टी साहब राधेलाल जी, जस्टिस ब्रज किशोर जी, सर लक्ष्मीपति मिश्र जी, कुँवर सर जगदीश प्रसाद जी, प्रो0 चंपाराम जी, भइया साहब श्री नारायण जी, पू0 बनारसी दास जी, कक्का खरगराम जी इत्यादिद्ध के बारे में बताते हुए वह कभी नहीं थकते थे। स्मृति–ग्रंथों, जीवन–परिचय एवं आत्मकथाओं को उन्होंने सदा बड़े चाव से पढ़ा और सुनाया। सन् '1961' से पहले के उन प्रारंभिक वर्षों की तो बस यही यादें हैं कि लोक–निवास में बड़े बाबा, दादी एवं दद्दा बाबा के साथ बिताए समय के अलावा पापा की हर शाम बड़े बाबा एवं दद्दा बाबा की बैठकों में उनके

मिलने–जुलने वालों के साथ ;जिनमें तत्कालीन लखनऊ के विशिष्ट गण्यःमान व्यक्ति एवं परिवार/चतुर्वेदी समाज के बुजुर्ग, युवा शामिल थेद्ध ही बीतती थी। मोतीनगर, पानदरीबा, गणेशगंज व चारबाग में अपने सभी परिवार–जनों तथा अपनी ननिहाल के लखनऊ स्थित सभी रिश्तेदारों से वह नियमित मिलने जाते थे।

सन् 1961–65 के बीच पापा सीतापुर में नियुक्त थे। हम पॉच बहन–भाइयों के अलावा हमारे चाचा ;स्व0 भूपेन्द्र जीद्ध एवं हमारे हमउम्र मनोज जी भी शिक्षा हेतु वहीं साथ थे। तब ज्ञान हुआ कि सीमित आय में सम्मान–पूर्वक एवं ईमानदारी से जीवन–निर्वाह कैसे किया जा सकता है। छोटी–छोटी आवश्यकताओं/जरूरतों के लिए पापा कहते थे कि अगले तीन महीने के 'बजट' में कोई गुंजाइश नहीं है। 'बजट' शब्द से ही उन दिनों कैसी नफ़रत सी थी? पापा का मासिक बजट और देश की पंचवर्षीय योजनाएँ एक समान थीं – साधनों की कमी, सीमित आय और कभी न खत्म होने वाली ;बच्चों कीद्ध मांगें। ''बजटीकरण'' के उन दिनों में भी यदि एक वस्तु की कभी 'ना' नहीं हुई तो वह थी पढ़ाई–लिखाई से संबंधी कोई भी आवश्यकता। उन्हीं दिनों साहित्य–रत्न होते हुए भी पापा के प्रोत्साहन/पीछे पड़े रहने से मम्मी की भी अंग्रेज़ी पढ़ाई प्राथमिक कक्षा स्तर से घर पर ही शुरु हुई थी, जो बाद में निजी परीक्षार्थी के रूप में आगरा विश्वविद्यालय से एम0ए0 करके ही रुकी। इस तरह घर में हम आठ विद्यार्थी थे जिनके लिए 'बजट' में चार अलग–अलग शिक्षकों की घर आकर 'ट्यूशन' की व्यवस्था की गई थी। हम लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए उन्हीं दिनों पापा का एक प्रस्ताव आया कि घर पर स्वाध्याय के दौरान् गणित में किए हर प्रश्न पर वह इकन्नी देंगे। हर बच्चे द्वारा किए दस–दस, बारह–बारह सवालों के कारण प्रस्ताव शीघ्र ही ठप्प करना पड़ा। पढ़ाई के बाद अगली प्राथमिकता खेल–कूद की थी। क्रिकेट, टेनिस, बैटमिंटन के लिए 'बजट' से अनुदान निकल ही आता था पर बेचारे सिनेमा, चाट, रेस्टोरेंट बाजी हमेशा मुहॅकी खाते थे। पढ़ाई में प्रोत्साहन के लिए पापा द्वारा हम लोगों के लिए रखे तत्कालीन आदर्श थे – अशोक, अजीत मामा ;सुपुत्रा स्व0 उजागर लालजीद्ध एवं आभाजी/विभाजी ;सुपुत्राी श्री गिरीश चन्द्र जीद्ध। उन चारों की शैक्षणिक योग्यताओं/उपलब्धियों के कारण पापा ने उन्हें हम सबके लिए एक आदर्श, एक मापदण्ड बनाया था। बाकी पापा के अधीनस्थ, रुड़की के स्नातक, सहायक अभियंता द्वय ;श्री मूल चन्द्र शर्मा एवं श्री वशिल लाल भाटियाद्ध एवं सीतापुर में तब नियुक्त परिवीक्षाधीन ;प्रोबेशनरीद्ध श्री वी0 के0 कपूर, आई0ए0एस0 और श्री त्रिावेदी, आई0पी0एस0 तो थे ही।

उन्हीं दिनों परिचय हुआ पापा की कार्य के प्रति अपार लगन, एकाग्रचित्तता, कार्य–क्षमता, लगातार अथक परिश्रम करने का माद्दा, उनकी बेमिसाल ईमानदारी, अपने मातहतों के हित के प्रति उनकी रुचि एवं पूर्ण लगन, सिंचाई–विभाग के प्रति उनकी अटूट–निष्ठा एवं पूर्ण–समर्पण, अभियंता–समुदाय एवं इंस्टीट्यूशन ऑफ़ इंजीनियर्स के प्रति उनका लगाव, उनके व्यक्तित्व में निहित आर्यसमाजी विचार, गांधी/नेहरुवाद के प्रति उनकी निष्ठा, समाजवादी/साम्यवादी विचारधारा के प्रति उनका झुकाव, स्वतंत्रा भारत के शासन–तंत्रा में 'ब्यूरोक्रेट्स' का लगातार बढ़ता प्रभाव एवं 'टैक्नोक्रेट्स' के स्तर में

निरंतर ह्रास पर उनका क्षोभ। दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, राजा राम मोहन राय, तिलक महाराज, गोखले इत्यादि महाविभूतियों के जीवन–चरित्रा एवं वृतांत का पापा को लगभग कण्ठस्थ होना। बचपन से ही एक ऑख में दृष्टि कमजोर होने के बावजूद किसी भी विषय पर कैसी भी पुस्तक को पढ़ने में रुचि एवं उनका विशद् ज्ञान, विभिन्न विषयों पर जानकारी एवं उन पर चर्चा करने की तत्परता व क्षमता, शैक्षिक विषयों में गणित के प्रति विशेष रुझान, कंप्यूटर से भी तेज़ चलता उनका दिमाग ;हम बच्चों की नज़र में चाचा चौधरी से भी तेज़द्ध, उनकी दिमागी प्रखरता व पकड़, सीधा–सहज–सरल स्वभाव, कभी किसी की आलोचना /बुराई न करना, खाने में जो परोस दिया गया, रुचि से खाना और तुरंत, झटपट समाप्ति। हॉ, खीरा–ककड़ी, मूंगफली, अमरुद, चूरन ;कैसा भी, कोई भीद्ध सादा पान एवं मिठाई ;यदि किसी ने प्रस्तुत कीद्ध रुचि से खाते थे। चाय–कॉफ़ी, ठंडे पेय में कोई विशेष रुचि नहीं – यदि मिल गया तो ठीक। कपड़ों के प्रति तो उनमें उदासीनता ही थी। क्या पहना, कब पहना, कोई मानी नहीं रखता था। सुना था कि रुड़की में सिविल इंजीनियरिंग की शिक्षा के लिए प्रस्थान के समय उनके बाबा ने ज़ोर देकर पहली बार उनके लिए पैंट सिलवाईं थीं, उसके पहले लखनऊ विश्वविद्यालय एम0एस0सी0 ;प्रथमद्ध तक तो पजामों से ही काम चला था। यह था पहनावा तत्कालीन लखनऊ के एक अति–प्रतिष्ठित एवं सफलतम इंजीनियर के प्रिय पौत्रा एवं एक लोकप्रिय वकील तथा उभरते हुए शिक्षाविद् एवं समाज–सेवी, जाति–रत्न पिता के ज्येष्ठ पुत्रा का! काम के प्रति पूर्ण–निष्ठा एवं कर्तव्य–परायणता के साथ कार्य–ततपरता उनमें एक बेचैनी की हद तक थी, दूर–दराज के इलाकों में भी सूर्योदय से सूर्यास्त तक नहरों का निरीक्षण–दौरा करते थे। मिलनसारिता केवल परिवार एवं चतुर्वेदियों तक ही सीमित न थी, साथ के अफ़सर समुदाय से नियमित पारिवारिक मिलन होते थे। दृढ़ निश्चयी ऐसे कि एक बार निश्चय करने के बाद उस पर अडिग, अटल भले ही हम लोग लाख अनुरोध करें। हम लोगों की पढ़ाई–लिखाई में उनकी ओर से पूर्ण स्वतंत्राता थी। केवल पाबंदी थी तो रात में देर तक जगने की एवं सुबह जल्दी उठना लाज़मी था; भले ही उसके लिये तड़के ही गर्मियों में भी उन्हें पंखे ही क्यों न बंद करने पड़ें?

उसी दौरान उनके व्यक्तित्व की कुछ और विशेषताऍ सामने आईं। वह अपने ससुराल पक्ष के संबंधों को भी अपने पारिवारिक संबंधों के समकक्ष महत्व देते थे। सीतापुर से लखनऊ जाने में पहला पड़ाव रिवरबैंक कालोनी स्थित हमारी ननिहाल में होता था, उसके बाद ही लोक–निवास पहुॅचते थे। दूसरी विशेषता जो स्वयं देखी एवं अनुभव की – परिवार के किसी सदस्य की बीमारी अथवा अस्पताल में भर्ती होने पर वह दिन–रात सेवा–सुश्रूषा–उपस्थिति को तत्पर उपलब्ध रहते थे। पहले भी हल्की सी याद थी कि पू0 बाबा मुक्ताप्रसाद जी की बीमारी के दौरान् पापा दफ्तर से छुट्टी लकर चौबीस घंटे उन्हीं के साथ रहते थे। उसी समय की एक और यादगार घटना, हम बच्चों के लिये घर में पहली बार एक 'असेंबिल्ड' रेडियो राष्ट्रपति कैनेडी की हत्या के बाद तत्संबंधी खबरें सुन पाने के बहाने आया एवं परिणाम–स्वरूप रेडियो–सीलोन, विविधि भारती, उर्दू कार्यक्रम इत्यादि से प्रसारित फिल्मी गानों एवं प्रायोजित कार्यक्रमों से हम लोगों का परिचय घनिष्ठ हो गया।

सीतापुर में पंद्रह वर्ष की उम्र तक पापा के अद्भुत, अनुकरणीय व्यक्तित्व के बारे में बनी धारणाएँ समय के साथ और सुदृढ़ होती गईं। 'बजट' ने एक बार पुनः अपना प्रभाव 31 जनवरी 1967 की शाम दिखाया; जब नेशनल डिफेन्स अकादमी, खड्गवासला प्रस्थान के अवसर पर ट्रेन छूटने के आधे–पौन घंटे पहले ही मथुरा की राजकीय ट्रेज़री से अग्रिम तनख्वाह लेकर करीब साढ़े छह––सात सौ रुपये की आवश्यक, देय धनराशि की व्यवस्था हो पाई। उनका पठन–पाठन–लेखन, इंस्टीट्यूशन आफ़ इंजीनियर्स के कार्य–कलापों के प्रति उनकी कटिबद्धता भी दिन–ब–दिन बढ़ती ही गई। कार्य के प्रति अटूट लगन एवं समर्पण के दो और दृष्टांत याद आते हैं। पहला नासिक में बेटी सोनल के जन्म पर लखनऊ से नासिक वह ट्रेन से आए और लगभग बारह घंटे रुककर ही वापस जाना चाहते थे। हमने वापसी का आरक्षण एक दिन बाद का कराया था, पर वह बिना आरक्षण यह कहकर कि आने का उद्देश्य बेटी को देखकर पूरा हो गया, दूसरे दर्जे में लगभग 40 घंटे के सफ़र पर रवाना ही हो गए। दूसरा दृष्टांत उनकी देहरादून नियुक्ति का है, जब एक पैर पंजों से घुटनों के ऊपर तक प्लास्टर में होने पर भी वह दुर्गम, पर्वतीय क्षेत्रों का दौरा यथावत् करते रहे। एक दिन पहाड़ों में 10–11 घंटे कार चलाने के बाद जब उन्होंने ड्राइवर से कहा कि  थोड़ा और आगे जाकर ही रात्रि–विश्राम के लिये रुकेंगे, तो उसने धीरे से हम लोगों से कहा कि यदि अब साहब ने आज और गाड़ी चलाने को कहा तो मैं पहाड़ से कूद जाऊंगा।

समय के साथ–साथ पढ़ने के अलावा लेखन का उनका कार्य एक जुनून की शक्ल में बढ़ता गया। अनियांत्रिाकी एवं तकनीकी विषयों पर तो उनके हज़ारों लेख देशी–विदेशी पुस्तकों/प्रकाशनों , पत्रा–पत्रिाकाओं में छपे। रेडियो–वार्ताएं उन्होंने दीं, विभिन्न विषयों पर सैकड़ों गोष्ठियों–समारोहों में बोले। ''चतुर्वेदी'' में वह नियमित छपते थे। इंस्टीट्यूशन आफ़ इंजीनियर्स के साथ–साथ इंस्टीट्यूशन आफ़ वैल्यूअर्स में भी पूर्णरूपेण भाग लेने लगे एवं दोनों ही संस्थाओं के उच्चतम पदों को कालांतर में सुशोभित किया। उनके निश्छल, सादे जीवन का एक दृष्टांत उनकी बैंकाक यात्राा थी जहॉ से वह लगभग सारी की सारी , उस समय दुर्लभ विदेशी मुद्रा वापस ले आए क्योंकि उन्हें वहॉ ऐसा कुछ नहीं दिखा, मिला जो भारत से बढ़िया था या यहॉ अप्राप्य था। लगभग चार दशकों से भी अधिक समय तक निजी गाड़ी की आवश्यकता नहीं समझी और न किसी और पर वाहन के लिये निर्भर किया या कहा। जहॉ जाना था, गए – या तो पैदल अथवा सार्वजनिक वाहनों से। जीवन के अंतिम दशक में मम्मी के स्वास्थ्य, उनके रक्तचाप का और अधिक ख्याल रखते थे। उनकी दवाइयों के लिए, उनके/अपने लिए पुस्तकालयों से किताबें लाने के लिए नियमित रूप से लोक–निवास से कैंट पॉच–छह मील पैदल ही आते–जाते थे, समय पर उनके उचित खान–पान का पूरा ख्याल रखते थे। आत्म–सम्मान एवं आत्म–निर्भरता ऐसी कि कभी किसी से, हम सबसे कुछ नहीं लिया। स्वयं आजीवन अपने खर्चों में कटौती करके दूसरों को दिया ही। कितने ही छात्रों को शिक्षा के लिए अज्ञात धन–राशि दी जो बाद में, अन्य सूत्रों से, किसी अन्य प्रकरण में सामने आया। हम लोगों ने यदि कभी किसी कारण से उन पर चवन्नी भी खर्च की तो तुरंत वापस दे देते थे। बिना बताए, बिना चर्चा किए, हम लोगों के नाम से,

नाती–नातिनों के नाम से जगह–जगह निवेश करते रहे, पर स्वयं आंशिक रूप से प्रयोगार्थ उपयुक्त लिफ़ाफों की टिकट लगाकर दुबारा प्रयुक्त करते थे, पुराने कागज भी दूसरी ओर लिखने के लिए संभाल कर रखे रहते थे। तर्क यह था कि इन चीजों को प्रयोग में न लाना या फेंक देना राष्ट्रीय अपराध व नुकसान है, ऐसा गांधी जी कहते व करते थे।

पापा के सामने बीते हमारे उनतीस वर्षों के वैवाहिक जीवन में, विभिन्न स्थानों पर नियुक्तियों के दौरान, एक दिल्ली को छोड़ कर वह कभी भी छह–सात दिन से ज़्यादा हमारे साथ शायद ही रहे हों। यह कमी भी उन्होंने अपने महाप्रयाण के पहले 2005 में लगभग पॉच महीने आवडी ;चेन्नईद्ध में रहकर पूरी कर दी। क्या यह उनका दिया कोई संकेत था जो हम सब न समझ सके। आवडी से वाया दिल्ली, लखनऊ वापसी का उनका आरक्षण भी अभूतपूर्व बारिश व बाढ़ एवं ट्रेनें रद्द होने की वजह से 28 एवं 30 अक्तूबर, दो बार बदलवाना पड़ा। क्या यह भी कोई दैवी संकेत था कि उनके पार्थिव शरीर की यही अंतिम रेल–यात्राा होगी? तत्पश्चात, दो महीने के भीतर ही तो वह अपनी अंतिम यात्राा पर चल पड़े और वह भी सदावत् झटपट, बिना किसी को पूर्व–सूचना के, बिना किसी तैयारी के, बिना किसी को सेवा करने का कोई मौका दिए यद्यपि स्वयं उन्होंने दूसरों की हफ्तों–महीनों सेवा–सुश्रूषा की थी।

आवडी–प्रवास की उनकी यादें तो जैसे कल–परसों की ही बातें हैं। वही दुबली–लंबी–पतली पर अब थोड़ी दुर्बल काया। चार–पॉच महीनों में लगभग दो किलो वजन बढ़ने पर वह आश्चर्यचकित थे। घर की वजन मशीन को गलत करार दिया और तभी मानने को तैयार हुए जब वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी ने उन्हें उनके वजन का रिकार्ड अस्पताल में दिखाया, अस्पताल की ही मशीन का उपयोग कर। पठन–पाठन–लेखन पहले से भी कहीं और ज्यादा। सभी को आश्चर्य–चकित कर देने वाली सक्रिय दिनचर्या। सुबह लगभग साढ़े पॉच बजे पूरा तैयार होकर 5–5.30 कि0मी0 घूमकर उतावली–पूर्वक वापस आना कि सात बजे हमारी दफ्तर रवानगी से पहले दो–चार मिनट बात कर लें। स्वयं जाकर या किसी और से अपने व मम्मी के लिए पुस्तकालय से किताबें लाना। चार अखबार पढ़ना एवं मम्मी को सुनाना। दिन भर पठन–लेखन। जो लिख लिया, उसे स्वयं बाज़ार में टंकण के लिए देना व लाना। मम्मी की दवाओं, उनके खान–पान का पूरा ध्यान। बड़ी उत्सुकता, बड़े चाव से हम सबको बताना कि प्रातः भ्रमण में, बाज़ार में किससे मिले, क्या बातें हुईं, कौन था, क्या करता है, क्या परिवार है इत्यादि। इन चर्चाओं में किन्हीं प्रभुजी एवं रामलूजी का नाम कई बार आता था। यह थी हमारे पापा की विशेषता – तमिल–भाषी क्षेत्रा में, यहॉ के तमिल लोगों से जिन्हें हिन्दी न के बराबर समझ आती है, अंग्रेज़ी भाषा में बोलने की क्षमता उनमें से अधिकांश में संभवतः न रही हो। फिर भी पापा उन लोगों से उनके बारे में, उनके मतलब व रुचि के विषयों के बारे में बातचीत कर ही लेते थे। फिर भी उन्होंने स्वयं किसी पर यह न जाहिर होने दिया कि कहॉ किस घर में रहते हैं, किसके पिता हैं, ताकि उनके द्वारा कोई हम पर अवांछित दबाव न डाल सके। शाम को हम सबके साथ उतने ही उत्साह से प्राणायाम एवं योगासनों का सवा–डेढ़ घंटे का दौर – तिरासी वर्ष की उम्र में भी उनका यही प्रयास रहता था कि हर आसन, सूर्य–नमस्कार इत्यादि भी, वह हमसे भी उम्र में दस–पंद्रह वर्ष छोटों की तरह क्यों नहीं कर सकते या

मम्मी क्यों नहीं करने का प्रयास करतीं? उसके बाद रात साढ़े आठ बजते ही टेलिविजन पर अपने पसंदीदा सारियल देखने की उत्सुकता/बेचैनी। यह शौक संभवतः आवडी आने से पहले कलकत्ते में बहन इला की उनको देन था।

आवडी प्रवास के दौरान ही उन्होंने हमारी सहधर्मिणी सुनीता जी को नियमित रूप से कविता–लेखन के लिए प्रेरित व प्रोत्साहित किया। स्वयं पहल करके पूरी रुचि लेकर उन्होंने सुनीता जी की कविताएँ ''चतुर्वेदी'' में छपवाईं। हमारी धर्मपत्नी को सदैव उन्होंने हमसे अधिक सीधा–सरल एवं धैर्यशाली श्रोता पाया और यह बात हमें बताने से वह कभी चूके भी नहीं। अलबत्ता हम उन्हें कभी न बता पाए कि एक पुत्रा एवं पति के रूप में इससे ज्यादा संतोष व गर्व की बात हमारे लिए और क्या हो सकती है? सुनीता जी के बनाए खाने की भी उन्होंने सदैव तारीफ़ की।

आवडी में ही अपने अति–जिज्ञासु स्वभाव के अनुरूप ही बेटी पल्लवी से भी वह उनके पाठ्यक्रम, ब्रिटिश शिक्षा पद्धति, प्रणाली एवं सुविधाओं, उसके कार्य, खान–पान, रहन–सहन आदि के बारे में बहुधा चर्चा करते व जानकारी लेते। भारतीय–इतिहास स्वतंत्राता–पूर्व कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशनों, चतुर्वेदी महासभा के विभिन्न अधिवेशनों की तो उन्हें विशद् जानकारी थी ही, ब्रिटेन के इतिहास, भूगोल एवं वहॉ की राज्य/शासन प्रणाली पर भी वह पललवी को काफी कुछ बताते थे। कंप्यूटर द्वारा उपलब्ध विभिन्न सुविधाओं के बारे में भी वह पल्लवी से विस्तार में पूछते थे। आवडी में ही अपने स्वभाव के अनुरूप उन्होंने पूरी हैरी पौटर सीरीज भी पढ़ डाली। एक दिन बाज़ार से घर वापस आने पर बोले कि एक बेहद मोटा, 'अनफिट' लड़का दिखा था, उससे हमने कह दिया कि तुम घर आकर हमारी बहू से मिलना। वह तुम्हें अश्वगंधा के पत्ते खिलाकर तुम्हारा वजन कम कराएंगी।

एक और दिन उन्होंने हमें अपने एक मातहत से कहते सुना कि ट्रेन आरक्षण के लिए चेन्नई या तो लोकल ट्रेन से जाना अथवा अपने निजी दोपहिए से/सरकारी गाड़ी मत ले जाना। खर्च के लिए 100/– अतिरिक्त अलग से दे रहे हैं। प्रसन्न होकर बोले कि हम भी बिल्कुल यही करते – तुमने कुछ तो हमसे सीखा। उनके विशद् ज्ञान, सरल–सहज स्वभाव, मिलन–सारिता, सक्रिय दिनचर्या, पैनी परख/पकड़, पुरुष अथवा महिला – किसी भी उम्र के व्यक्ति से कभी किसी की आलोचना/बुराई किए बिना उस व्यक्ति की रुचि के विषय पर लंबी बात–चीत करने के गुणों से हमारे सभी सहयोगी एवं उनकी पत्नियॉ प्रभावित व आश्चर्य–चकित थे। तभी आवडी प्रस्थान के दो महीने के भीतर ही उनके महाप्रयाण से वह सभी अचंभित रह गए।

ऐसे थे हमारे विलक्षण पापा जिनका पुत्रा होने में हमें गर्व है। वह अब नहीं रहे पर उनकी यादें, जिनमें से कुछेक ऊपर उद्धृत हैं, हमेशा हमारे साथ रहेंगी।

# सरोकार के सेतु थे पापा के पत्रा

मधुर चतुर्वेदी

एक सिविल इंजीनियर के तौर पर नहरें, बांध और उन पर बने विशालकाय पुल पापा के व्यावसायिक कार्य और जीवन का अभिन्न हिस्सा थे। उनके जीवन का यह रूप सबका जाना–माना है मगर सरोकार के जिन सेतुओं का उन्होंने निर्माण किया, उनका स्मरण कर उनके प्रति श्रद्धा और बढ़ जाती है। इस निर्माण में पत्राों की एक अटूट भूमिका थी। बचपन में मिले पत्रा की खुशी कभी कम नहीं होती और पहले पत्रा की याद तो जैसे मन में बस जाती है। बचपन में अपने नाम का पत्रा किसी उपहार से कम नहीं लगता। इस उम्र के आधे–अधूरे तरीके से लिखे पत्राों से खैर–खबर और हाल–चाल की पूछ–ताछ से अधिक खुशी पत्रा पर अपना नाम पढ़ कर मिलती थी। कई–कई बार पत्रा पढ़ कर और उससे भी ज्यादा बार पते पर अपना नाम लिखा देखकर भी जी नहीं भरता था। अपने नाम और पते पर डिलीवर किया गया पहला पत्रा मानो अपनी आइडेंटिटी का अहसास कराता है।

बचपन से ही पापा के नाम आने वाली बेशुमार डाक बड़ी प्रभावित करती थी। डाकिया गेट के पास पत्थर पर घर के पत्राों का बड़ा सा बंडल रख देता था और गेट पर अगर कोई मिल जाता तो बंडल उसी को दे जाता। सुबह जब डाक आती तो स्कूल गए बच्चे डाकिए को मिस कर देते थे, मगर शाम डाकिए के आने के समय हमें उसका इंतज़ार रहता था। डाकिया नियमित आता था और अपनी ड्यूटी का पाबंद मुलाजिम माना जाता था। आज आईटी का जमाना है। सूचना प्रौद्योगिकी से जीवन में आई क्रांति ने फाइल और कागज़ों के साथ हमें पत्राों से भी दूर कर दिया है। इसने पत्राों के साथ डाकिए से भी हमारी दूरी बढ़ा दी है।

तब हमारी डाक तो नहीं आती थी। मगर पत्राों के बड़े से बंडल को खोल कर जब डाकिया उनमें से पत्रा और मैग्जीन अलग करके देता तो प्रायः सबसे अधिक पत्रा पापा के नाम से होते थे। उसमें बड़ा हिस्सा इंस्टीट्यूशन आफ़ इंजीनियर्स व एसोसिएशन और कौंसिल के पत्राों और देश–विदेश की मैग्जीन और सोवेनियरो का रहता था जिन पर लगे डाक टिकट अकसर हमारे संग्रह का हिस्सा बन जाते थे। अपनी मित्रा–मंडली में उन टिकटों को दिखा कर हम इतराते थे। स्वेज कैनाल के निर्माण की जयंती जैसे विशेष अवसरों पर निकाले गए टिकटों को दोस्तों को दिखाते समय विविध विषयों के बारे में अपनी जानकारी की धाक भी जमाते थे। स्वाभाविक था कि पापा से डाक टिकट लेने की अनुमति लेते समय उनसे टिकट के विषय के बारे में पूछने पर उसकी जानकारी भी मिल जाती थी। दोस्तों को रंग–बिरंगे, आकर्षक और चिकने टिकट दिखाते समय उनकी आंखों में सराहना और ईर्ष्या का मिला–जुला भाव देखकर टिकटों का बड़े भाईसाहब नीलेन्द्र का संग्रह हमें और अनूठा लगने लगता था और उन्हें दिखा कर और उन पर 'कमेंटरी' सुना कर दोस्तों पर धाक जमाने का मौका भी मिलता था; भले ही यह जानकारी उन टिकटों की तरह दोस्तों की हमसे ईर्ष्या बढ़ा देने का एक और कारण बन जाती थी।

उस उम्र में पापा की डाक से हमारा इतना ही वास्ता था कि पत्रों और डाक से आने वाली उनकी मैग्जीन आदि को सहेज कर उनकी टेबल पर रख दें और अगर लिफाफे पर देश–विदेश का कोई नया टिकट लगा हो तो पापा से उसकी फरमाइश कर दें।

उस उम्र में एक मित्रा का अपने नाम लिखा पहला पत्रा मिलने की याद इतने बरसों बाद भी भूली नहीं है। अपने पिता के तबादले के कारण दूसरे शहर में गए मित्रों ने पत्रा लिखा था। शायद उसमें नया स्कूल, शिक्षकों और दोस्तों का हवाला था। उस सबकी बड़ी धुंधली याद है। इतना जरूर याद है कि अपने नाम और पते पर भेजा गया वह पत्रा पापा के हाथों मिला था तो अपनी नज़रों में जैसे अपना कद कुछ बढ़ गया था। उसके बाद पत्रों को लिखने और पत्रा पाने का सिलसिला ही बन गया।

पापा के पत्रों ने जीवन में अपना जो एक अलग स्थान बनाया, उसकी शुरुआत तभी से हो गई थी। पापा पत्रा लिखने के बारे में बड़े नियमित थे। अपने नाम मिले शुरुआती पत्रों में पापा के लिखे एक पत्रा की याद है। परीक्षाओं के बाद और गर्मियों की छुट्टी शुरु होने से कुछ पहले किसी शादी में दूसरों के साथ घर से दूर दूसरे शहर में जाने का संयोग बना। उसी दौरान् रिजल्ट आने वाला था। पापा ने पत्रा लिख कर स्कूल की लाइब्रेरी से ली किताबें जमा करा देने की बाबत पूछताछ की और याद दिलाया था कि रिजल्ट मिलने में देर लग सकती है। छुट्टियों में और पापा के स्थानांतरण के कारण उनसे भिन्न स्थान पर रहने के कारण तब के पत्रों में पापा की नियमित दिनचर्या में शामिल उस दौरान आयोजित सेमिनार और अन्य प्रोफेशनल समारोहों और पारिवारिक कार्यक्रमों से संबंधित सूचना मैं बड़े चाव से पढ़ता था। उनके पत्रा पापा के साथ पोस्टेड 'अंकल' और अन्य अफसरों और समाज में और परिवार में सम्मानित जनों के बारे में सूचनाओं को अपडेट कर पाने का एक निश्चित जरिया थे। बाद में अपने सेवाकाल में अपनी ट्रेनिंग और नियुक्ति के दौरान और पापा के अनेक स्थानों पर प्रवास के दौरान उनके पत्रों को नियमित रूप से पाना और पढ़ना मेरे लिए जीवन की एक अमूल्य निधि साबित हुआ है।

समय के साथ पापा के पास आने वाले पत्रों की सूचनाएँ भी बदलने लगी थीं। पापा के पास आने वाले पत्रों में देश–विदेश से सिविल इंजीनियरिंग और अन्य टैक्निकल और नॉन टेक्निकल संस्थाओं, इंजीनियरिंग कॉलेजों और शैक्षणिक संस्थाओं से सभा और समारोहों में अध्यक्षता और उनमें पेपर पढ़ने के लिए आने वाले अनुरोध और आमंत्राण पत्रों का स्थान बढ़ गया था। उसी के साथ उनके मुझे लिखे पत्रों में उनके मित्रों और परिचितों के बड़े सर्किल के अलावा अपने बड़े परिवार और समाज के लोगों की बाबत मिलने वाली सूचनाओं का स्वरूप भी बदल गया। घर और परिवार के सदस्यों के सुख–दुख की हर सूचना में हमें साझेदार बनाकर वह पत्रों द्वारा हर किसी की सफलता का उल्लेख करना कभी नहीं भूलते थे। चाहे वह प्राइमरी कक्षा में पढ़ने वाले किसी बच्चे की क्लास में और परीक्षा में मिली सफलता का समाचार हो या स्कूल की किसी गतिविधि में उसकी भागीदारी का रोल हो या किसी को उसकी सेवा में मिली तरक्की का हवाला हो। इन समाचारों ने हमें घर, परिवार और समाज के जानकार लोगों के सुख–दुःख में साझीदार बनना सिखाया। हमने उनकी सफलता को तभी पत्रा आदि द्वारा

स्वीकार करना सीखा। पापा के पत्रा इस दायित्व का अहसास कराते थे। पापा के पत्रा से उनके मित्राों और परिचित अधिकारियों की प्रोन्नति, उनको उनके विभाग और व्यवसाय में प्राप्त सम्मान आदि की सूचना मिलती थी। उसके साथ ही विपरीत परिस्थितियों में अपनी मेहनत, लगन और प्रयासों से विशेष सफलता और असाधारण सम्मान पाने वाले किसी छोटे–बड़े व्यक्ति से संबंधित किसी सूचना का उल्लेख भी होता था। इससे अपने जानकार लोगों के बारे में बनी उनकी धारणा के निरंतर सच साबित होने पर आश्चर्य और हर्ष होता था। मगर तभी यह अहसास होता कि उनके पत्राों से भी तो श्रम और प्रयास करने से सफलता मिलने पर विश्वास दिलाने की उनकी धारणा का संदेश मिलता था।

लखनऊ से लौट कर पापा के अचानक अस्वस्थ होने और उनके निधन का दुःखद समाचार देने के लिए उनके जिस किसी मित्रा, सहयोगी और परिचित को फोन किया तो इस सूचना का सहसा विश्वास न कर और शोक और संवेदना व्यक्त करने के बाद प्रायः हर किसी ने उसी दौरान उनका पत्रा मिलने का जिक्र किया, जिनसे उनके स्वस्थ होने और सदैव की तरह उनके पारिवारिक और सामाजिक कार्यों और गतिविधियों में व्यस्त होने का संकेत मिलता था। ऐसी दुखद सूचना की तो किसी ने सपने में भी कल्पना नहीं की थी। शोक में डूबे उनके मित्राों और अन्य जानकार लोगों से मैंने यही कहा कि अस्पताल में भी स्टाफ उनके बहुत जल्द वहॉ से रिलीव होने की उम्मीद कर रहा था। वार्ड की इंचार्ज मेट्रन ने कहा कि पापा की हालत इस प्रकार अचानक सीरियस हो जाने का अनुमान इलाज करने वाले डॉक्टरों की टीम को भी नहीं था। उसने वार्ड में दाखिल होते समय पापा को अपना केस खुद रिपोर्ट करते हुए देखा था। उनके केस को रिव्यू करते समय एक सीनियर डॉक्टर ने तो यहॉ तक कहा था कि वे इस यूनिट से जल्द फेमिली वार्ड में शिफ्ट किए जाएंगे और तब वह स्वयं अपने रूम में जाएंगे। पापा के पत्राों का हवाला दे रहे उनके मित्राों से मैं यह कैसे कहता कि लखनऊ से लौट कर मैंने जब घर का दरवाजा खोला तो जाली में एक पत्रा लगा हुआ पाया। वह पापा का ही पत्रा था और घर में होने वाले एक विवाह का कार्यक्रम तय हो जाने की सूचना के उस पत्रा में पहले से छुट्टी के लिए आवेदन करने की याद दिलाई गई थी।

## मेरे पापा एक गणमान्य पुरुष थे !

सुशील चतुर्वेदी

जीवन में संभवतः कुछ ही विषयों पर मेरे मन में उतनी अधिक अनिश्चितता रही हो जितनी कि पापा पर लेख लिखने के प्रस्ताव पर हुई। कभी ये प्रस्ताव मन को एक चुनौती लगा, तो कभी एक पहाड़, कभी निरर्थक तो कभी सही भी। पापा का विराट् व्यक्तित्व एवं उनके विविध आयामों का प्रभाव ऐसा रहा कि सोच की कलम की रिफ़िल सूख जाती थी, मगर दुबारा इसी विषय पर विचार करने पर मन के दूसरे छोर से जबाव आता था कि जीवन रूपी महाभारत की एक यह भी चुनौती है कि तुमने जिस विलक्षण व्यक्तित्व के धनी को लगभग पॉच दशक समीप से देखने का अवसर उसके पुत्रा होने के कारण पाया, उनके अवसान के पश्चात् उनके स्मृति ग्रंथ में अपने विचार अभिव्यक्त करने के अवसर का सदुपयोग करने का यत्न करो।

पापा के बहुआयामी व्यक्तित्व के किस रंग पर पहले दृष्टिपात कर प्रकाश डालें, निर्णय करना टेढ़ी खीर सा है तथापि उनकी अध्ययनशीलता बरबस मानसपटल पर उभरकर तुरन्त आ जाती है जिसके कारण साठ वर्ष की उम्र पार करने के पश्चात् उन्होंने पत्राचार से एल0एल0बी0 की डिग्री प्राप्त की। ऐसे ही उसी अवधि के समीप उन्होंने संस्कृत का डिप्लोमा किसी विश्वविद्यालय से पत्राचार से प्राप्त किया। चूँकि वे आत्मश्लाघा से सदा दूर रहे इसलिए ये सूचनाएँ मुझे वर्षों बाद ज्ञात हुईं।

अध्ययन में गहन रुचि के साथ जिज्ञासा एवं कौतूहल की भूख उनमें जबरदस्त थी। दैनिक हो, पत्रिाका हो, जाति समाचार संदेश हो या कोई जनरल, पढ़ते वक्त मुख्य मुद्दे नोट करने के लिए सदा कलम एवं कागज उनके साथ होते थे।

उनकी इसी रुचि ने लेखन में उनका रुझान पैदा किया जो बाद में आसमानी ऊँचाईयों को छू गया। संभवतः इसका प्रारम्भ बड़े बाबा मुक्ता प्रसाद जी के स्मृति ग्रंथ की तैयारी के दौरान हुआ। उल्लेख्य है कि वकालत, सामाजिक कार्यों एवं राजनीति में भयंकर रूप से व्यस्त होने के कारण बाबा पंडित निर्मल चन्द्र जी के स्थान पर उनकी शिक्षा एवं संपूर्ण देख–रेख का दायित्व निर्वहन बड़े बाबा ने ही किया जिस कारण वे उनके लिये शुरु से अतुल्य एवं अराध्य रहे। उनको जब तब बड़े बाबा का स्मृति ग्रंथ पढ़ते देखा जा सकता था। उक्त स्मृति–ग्रंथ के बाद उन्होंने बाबा निर्मल चन्द्र जी का स्मृति–ग्रंथ सफलता के संग निकाला। तदोपरान्त उन्होंने इंजीनियरिंग जनरल्स हेतु विश्व भर में हज़ारों पेपर्स लिखे। इनकी टाइपिंग  पर उनका गत तीन दशक में भारी व्यय भी हुआ। इसी बीच उन्होंने चतुर्वेदी में सामाजिक विभूतियों पर अकसर लिखा। उनके नाम पर बड़े भाई नीलेन्द्र जी के सुझावों पर सवा दो दशक पूर्व शुरु किये सिंडीकेट 'अविनाश प्रतिष्ठान' के लिये मेरे मॉगने पर उन्होंने कुछ इंजीनियरिंग विषयक जानकारी से सराबोर लेख दिए जो बड़े दैनिक पत्राों में प्रकाशित हुए एवं उनके पक्ष में बाद में इन पत्राों में पाठकों के पत्रा छपे।

उक्त दो क्षेत्राों में पापा की इतनी गहन रुचि का ही प्रभाव रहा कि मेरे बड़े भाई नीलेन्द्र जी आर्मी लॉ के विषय पर आज देश के अग्रणी लेखकों में स्थान बनाने की दिशा में तेजी से अग्रसर हैं तो भाई मधुर जी हिन्दी के एक स्थापित वरिष्ठ पत्राकार हैं। कार्य व्यस्तता के कारण अशोक जी इस क्षेत्रा में अपेक्षतया कम कोशिश कर पाए; पर जब भी उन्होंने यत्न किये, सराहनीय रहे। ये तीनों ही एवं बहन

इला पापा के सिंसियर प्रयासों एवं निरंतर दूसरे अधिक सफल छात्राों के मापदण्ड आदर्श के तौर पर बराबर सामने रखने से सफल छात्रा रहे।

पापा ने सदा सच्चे रूप से कर्मयोग के साधक होने में विश्वास किया जिसका उदाहरण कुछ वर्ष पूर्व एक शुगर फैक्ट्री द्वारा फैक्ट्री के सर्वे हेतु तीन दिन को उन्हें बुलाने के वक्त दिखा। पापा जब दो दिन बाद सर्वे पूरा कर लौटने लगे तो उन्होंने उसके मालिक से अपने पेमेंट के विषय में पूछा, जिस पर उसने उन्हें जिस राशि का चैक दिया, उसके अनुसार उनके काम का मूल्य उसका पॉच गुना था।

पापा ने आत्मसम्मान को सदा सर्वोपरि समझा, तभी तीन दशक पूर्व सिंचाईं आयोग सम्बन्धी एक मीटिंग में सचिवालय में विभागीय सचिव से मतभेद होने पर जब उन्हें मनाने हेतु तत्कालीन महिला सचिव ने 'मेरे सरकार' का संबोधन दिया, तो उन्होंने तुरन्त आपे से बाहर हो मीटिंग त्यागने की धमकी दे दी जिस पर उस सचिव ने उनसे तुरन्त क्षमायाचना की। आत्मश्लाघा के बजाए वे सदा दूसरों के सद्गुण उजागर करने में विश्वास करते रहे। हर व्यक्ति से उसके क्षेत्रा के विषय में अधिकार के साथ वे वार्तालाप करते देखे जाते थे। संयुक्त परिवार में हर परिवार के संबंधी समय–समय पर आते हैं। ऐसे में वह हर आगंतुक को सर्वप्रथम स्वयं अटैंड कर उसे घर में प्रवेश करते ही सहज अनुभूति कराते थे, जो आज दुर्लभ गुण है। खाने–पीने एव ंहम लोग के पढ़ने–लिखने के अतिरिक्त किसी क्षेत्रा पर उनका व्यय नहीं हुआ। उनका विचार था कि आज का बचाया एक पैसा कल का एक रुपया होगा, तब हम लोग उसका सदुपयोग कर सकेंगे। इसलिए रुड़की से इंजीनियरिंग पास करने के पूर्व तक उन्होंने एक भी सूट नहीं सिलवाया था। अपने अवसान के पूर्व वह घर में किसी का एक पैसा बकाया नहीं ले गए।

वह नम्रता की साक्षात् मूर्ति थे यद्यपि घोर ईमानदार होने के कारण झूठे, ढपोलसंरवी, भ्रष्ट एवं बेईमान उन्हें निरंतर त्रास्त एवं आक्रोशमय करते रहे।

पौने तीन दशक पूर्व मुंबई की एक निजी संस्था में चयन होने पर उन्होंने मुझसे कहा था कि मुंबई में लड़की एवं शराब से बचना। बिना उन्हें उत्तर दिए इसे मैंने यात्राा पूर्व का मुझे उनका अनिवार्य संकेत मानकर उस पर वहॉ बराबर अमल किया।

अनुशासन के संबंध में उन्हें ब्रिटिशकाल व उस समय के अधिकारियों के ढंग निरन्तर याद आते थे। बचपन से उन्होंने हम लोगों में अपने घर एवं ननिहाल समानता का भाव उत्पन्न किया फलतः आज तक हम लोग दोनों में विभाजन–रेखा नहीं खींच पाते।

जीवन के अंत तक वह अस्पताल दूसरों को देखने गये, स्वयं को दिखाने नहीं। सात दशक तक उनका सुबह चार बजे घूमने निकलने का नियमित कार्यक्रम रहा। सक्रियता से लबरेज पापा एवं ऑख में बालकाल से कम रोशनी के बावजूद दिन में 16–17 घंटे काम करने के बावजूद अंत तक ऊर्जावान रहे। उनको शत–शत स्मृति नमन जिन्होंने बराबर स्वयं को प्रचार से दूर रखा। अपने क्षेत्रा को दिए महत योग हेतु उन्हें मानद् उपाधि मिली। वस्तुतः वे गणमान्य थे, ये एक छोटा सा सच है।

# परमानन्द जी का पत्रा

11 मनोज कुंज
144, सेनापति बापट मार्ग
बम्बई – 400016

दिनांक 21.4.1996

आदरणीय भाई श्री अविनाश चन्द्र सादर पालागन,

पूज्य श्री निर्मल चन्द्र जी का स्मृति ग्रन्थ जो आपने बहुत परिरम से तैयार किया है। ब्रिगेडियर श्री नीलिश कुमार जी ने अत्यंत कृपा कर उसकी एक प्रति मुझे भी भेंट की। इसके लिए उनका तथा आपका अत्यंत आभारी हूँ। आपने अत्यधिक परिश्रम कर आवश्यक सामग्री संकलित की है। आपका प्रयास सराहनीय है। जिज्ञासु के नाते मैं बहुत कुछ लिखना चाहता था; पर खराब स्वास्थ्य के कारण लिख नहीं सकता। आपकी वंशावली देखने से लगा कि आपकी पूज्य माताजी तो हमारे गॉव 'तरसोखर' की हैं। श्री गुलाबराय जी की मृत्यु के बाद श्री मेवाराम जी, इनकी माताजी अपने चार पुत्राों के साथ पारना चली गई थीं, ऐसा डॉ0 शालिग्राम जी ने मुझे अपने रायपुर से लिखे ता0 13.10. सन् की खबर ठीक से नहीं आई। शायद 1961 हो, पत्रा में लिखा था। तब मैं कलकत्ते में रहता था। श्री गुलाबराय जी की पत्नी पाली डांडे से निकलने वालों में अंतिम थीं। पाली डांडे वालों के संबंध में सुना है। एक जिन्ह का श्राप था कि तुम्हारे वंश का जो कोई रहेगा, उसका वंशनाश हो जावेगा। सुना यह था कि पाली डांडे वालों से एक जमाने में एक लठैतथि सब कहां गई शैनजनि!

आपने पृष्ठ 482 पर श्री रामस्वरूपजी पांडे का उल्लेख किया, तो क्या ये डॉ0 शालिग्राम जी के चचेरे भाई थे।

आपने पृष्ठ 488 पर प्रेमचन्द पांडे तालगांव के बारे में लिखा है कि ये अपने भाई के साथ काजी को मारकर तरसोखर बसै तो आपको ये जानकारी कहॉ से मिली। मेरे पास सन् 1720 से गांव की वंशावली है। उसमें उनका नाम नहीं है। आपने यह भी लिखा कि भेड़ों को मार कर भगाया। उन्होंने भेड़ों नहीं 'मेवों' को मारा था। तब हमारे क्षेत्रा में मेवाती रहते थे। आपके ग्रंथ को पढ़ने से समाज तथा महासभा की कम से कम 100 वर्ष की जानकारी प्राप्त हो जाती है। वैसे मैंने इस ग्रंथ के कई अंश कई बार पढ़े हैं।

मुझे पांच वर्ष पूर्व पक्षाघात हुआ था, सो दाहिना हाथ कुछ कमज़ोर है। मेरे लिखे को अपने घर वाले ही पढ़ सकते हैं। क्षमा करें। ज्यादा लिख नहीं सकता।

आपका

परमानन्द

# सम्वेदना पत्रा

प्रिय भाई नीलेन्द्र,

मुझे सुनील से भाईसाहब के न रहने का दुःखद समाचार मिला। लगभग 36 वर्ष पूर्व उनसे पहली मुलाकात हुई थी और वह मेरे आदर्श हो गए थे। मेरे क्या, वह किसी भी इंजीनियर के लिए आदर्श थे। उनकी सादा जीवन व अपार तकनीकी क्षमता एवं मृदु व्यवहार सदैव ही प्रेरणा के स्रोत बने रहेंगे। उन्हें जीता–जागता एन्साइक्लोपीडिया ही हम लोग मानते रहे। रिटायर होने के बाद भी उनकी क्षमताओं, विशेषकर तकनीकी क्षमता में कोई कमी नहीं आई अपितु और अधिक बढ़ी। जिह्वा पर नियंत्राण इतना कि सदैव छरहरे बदन के बने रहे। जीवन्तता इतनी कि उम्र का प्रभाव उन पर बिल्कुल नहीं पड़ा। संभवतः आप जैसी संतानों ने उनमें सदैव उत्साह भरे रखा। जाना तो सभी को है परन्तु जो शान बान आन से जिए वही युगपुरुष होता है।

मेरी और मेरे समस्त परिवार की ओर से उस महामानव, अद्वितीय इंजीनियर और परम आदरणीय स्नेही को सादर नमन्! ईश्वर आप सब को इस दुःखद घड़ी में धैर्य बनाए रखने की शक्ति दे।

आपका

राजेश चतुर्वेदी

मुख्य अभियन्ता

जल निगम, उत्तर प्रदेश